# स्कूल ऑफ इवेन्जेलिजम्
# पाठ्यक्रम

# भारत में मसीहीयत का इतिहास

*COPYWRITE 2017- EDUCATIONAL RESOURCES*
*PERMISSION TO FREELY COPY AND DISTRIBUTE,*
*BUT PLEASE CREDIT SOURCE*

# पाठ 1
# पाठ्यक्रम की रूपरेखा

परिचय

1. भारत में मसीहीयत का आगमन
    क. संत थॉमस
        1. दक्षिण भारतीय परम्परा
        2. पाश्चात्य् परम्परा

2 ईसवी सन् 800 तक मसीहीयत
    क. पूर्वी क्षेत्र के लिए मिशन
    ख. भारत की ओर प्रवास
        1. प्रथम प्रवास
        2. द्वितीय प्रवास

3. मध्य काल (800–1500 ईसवी सन्) में मसीहीयत
    क. परिचय
    ख. भारत में कलीसिया अलग–थलग
    ग. यात्रियों की टिप्पणियां जो कलीसिया की दशा पर प्रकाश डालती हैं
    घ. उपसंहार

4. प्रथम 1500 वर्षों के लिए भारत में मसीहीयत के इतिहास का पुनरावलोकन
    क. सीरियन प्रवास के पहले
    ख. 345 से 1500 ईस्वी सन्
    ग. संस्थाएँ
    घ. मसीहियों की परम्पराएँ

5. ईसवी सन 1500 से 1705 तक भारत में मसीहीयत
    क. पुर्तगाली शासन
        1. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
        2. पुर्तगाली बन्दोबस्त
        3. पैड्रोआडो और रोमन कैथोलिक चर्च का विस्तार
    ख जेसुइट मिशन
        1. संत फ्रांसिस ज़ेवियर का जीवन और सेवा
        2. रॉबर्ट डी नोबीली का जीवन और सेवा
        3. मुगल दरबार में जेसुइट मिशन

6. इसवी सन 1706 से 1857 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन
    क. प्रोटेस्टेंट मिशनों का आगमन्
        1. वैश्विक संदर्भ
        2. वैश्विक धार्मिक संदर्भ
        3. भारत में राजनैतिक स्थिति

ख. त्रिंकोमाली (ट्रिंकोबार) मिशन
ग. शुल्ज़ और श्वार्टज़
घ. इंग्लिश इवेंजलिकल चैपलिन
च. सिरामपुर मिशन
छ. अन्य प्रोटेस्टेंट मिशन
1. ईस्ट इंडिया कंपनी चार्टर का नवीनीकरण
2. एंग्लिकन मिशन
3. बैपटिस्ट मिशन
4. मेथोडिस्ट मिशन
5. कांग्रीगेशनल मिशन
6. लूथरन मिशन
7. प्रेसबिटिरियन मिशन
8. चर्च ऑफ स्कॉटलैण्ड मिशन

7. ईसवी सन् 1800 से भारत में रोमन कैथोलिक मिशन
क. विस्तार
ख. सामाजिक क्रियाकलाप
ग. स्वदेशीकरण

8. ईसवी सन् 1858 से 1947 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन
क. जनसमूह परिवर्तन और कलीसिया पर उनका प्रभाव
ख उत्तर पूर्व भारत में मसीहीयत का विकास
ग. उत्तर पूर्व भारत में तीव्र कलीसिया वृद्धि के कारण

9. ईसवी सन् 1947 से भारत में मसीहीयत
क. राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और भारत में कलीसिया के ऊपर उसके प्रभाव
ख. वर्तमान भारत में कलीसिया – सांख्यिकी
ग. मसीही कहां पाए जा सकते हैं
घ. वर्तमान भारत में कलीसिया के कार्य
च. आज कलीसिया वृद्धि के कारण
छ. पांच डिनामिनेशनल समूहों के रूपरेखा–चित्र

10. बचा हुआ कार्य

ग्रंथ–सूची

# पाठ 2

# परिचय

विश्व के इतिहास का,, और कलीसिया के इतिहास का भी, अध्ययन अंतहीन है। अपने सर्वसाधारण रूप में वह वर्तमान परिस्थितियों से मेल किए बिना केवल तारीखों और घटनाओं का अध्ययन हो सकता है, परन्तु दूसरी ओर वह सर्वाधिक फलदायक तब हो सकता है जब उसका अध्ययन संसार, और विशेषकर कलीसिया का विकास कैसे हुआ यह समझने के विचार से किया जाए, और तब पूर्वकाल से प्राप्त शिक्षाओं को वर्तमान में लागू किया जाए। हम भूतकाल के ज्ञान के बगैर वर्तमान को अच्छे से समझ नहीं सकते हैं।

भारत में प्रथम शताब्दी से इक्कीसवीं शताब्दी तक सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक विकास के परिदृश्य में मसीहीयत के इतिहास का अध्ययन करना इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य है। मसीहीयत के इस इतिहास का कालखण्ड विस्तृत होने के कारण, भारत में संत थॉमस के आगमन, पुर्तगाली उपनिवेश और भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन के आरम्भ पर जोर दिया गया है। भारत में जन अभियान का मूल अध्ययन किया गया है और उत्तर पूर्व भारत में मसीहीयत के विकास को भी समाहित किया गया है।

भूतकाल की सफलताएं और गलतियां, कलीसिया की चुनौतियों, विकास और रुकावटों के साथ उसके वर्तमान ढाँचे को समझने में हमारी सहायता करेंगी। अतः सीखे गए पाठ वर्तमान में कलसिया के विकास और विस्तार के लिए, विशेषकर हमारे अपने भूभाग में, हमारे सहायक होंगे।

मूलरूप से यह पाठ्यक्रम रेव्ह. जॉन डैनिएल (मुंबई, भारत) के द्वारा लिखा गया था। इसे इंटरनेशनल स्कूल आ्फ इवेन्जेलिजम ने भारत में संचालित उसकी 20 स्कूलों के लिए अपनाया और संशोधित किया है।

पाठ्यक्रम के दस अध्यायों को पाठों में विभाजित किया गया है ताकि (प्रथम दो पृष्ठ को छोड़कर बाकी के पाठों को) क्रमवार प्रति दिन की कक्षा में पढ़ाया जा सके।

# पाठ 3

## अध्याय 1

## भारत में मसीहीयत का आगमन

क संत थॉमस : अनेक (सर्वाधिक लोक) यह विश्वास करते हैं कि भारत मे मसीहीयत के आरम्भ को यीशु मसीह के एक शिष्य संत थॉमस अर्थात् थोमा से जोड़ा जा सकता है जिसके लिए माना जाता है कि वह ईसवी सन् 52 में भारत आए। यह कैसे हुआ होगा पर विश्वास करने की दो भिन्न परम्पराएं (विवरण) हैं।

1. दक्षिण भारतीय परम्परा : इस परम्परा को आम परम्परा कहते हैं और यह केरल के सीरियन मसीहियों के मनों में गहराई से पैठे विश्वास के रूप में पाई जाती है। वे विश्वास करते हैं कि सीरियन चर्च की स्थापना ईसवी सन् 52 में स्वय संत थॉमस के द्वारा ही की गई थी। यह परम्परा दृढ़ता से मातनी है कि संत थॉमस सोकोरता (अफ्रीका के उत्तरी समुद्र तट में अरब सागर में स्थित एक द्वीप का दौरा करने के पश्चात् ई.स. 52 में कोचीन के उत्तर में स्थित क्रंगानोर कोडुंगालोर अर्थात पुराना हुजरीस) पहुंचे। उन्होंने कोचीन के आस पास बसी यहूदी बस्ती में सुसमाचार प्रचार किया और उनमें से, और उनके पड़ोसियों में से, अनेकों को प्रभु के पास लाया। उन्होंने दक्षिण के तटीय इलाके के सात स्थानों में कलीसियाओं की स्थापना की। उन्होंने चार उच्चवर्गीय परिवारों से प्रेसबिटरों का अभिषेक किया। आगे चलकर वे पूर्व में स्थित मयलापुर, तब चीन गए, तद्पश्चात् वे मयलापुर लौट आए (जो वर्तमान में चेन्नई का हिस्सा है)। अनेकों ने प्रभु को ग्रहण किया। वह चेन्नई के दक्षिण पश्चिम में आठ किलोमीटर दूर एक पहाड़ी पर ब्राह्मणों के हाथों मारे गए जो उनके कार्य की सफलता से विरोधी बन गए थें। उन्हे ई.स. 72 में भाले से मार दिया गया। उनके मृत देह को मयलापुर लाया गया और उस स्थान में दफ़नाया गया जिसे उन्होंने पवित्र आराधना–स्थल के रूप में तैयार किया था। इस मौखिक परम्परा की ई.स. 580 में बिशप ग्रेगोरी के लेखों में पुष्टि की गइै है जिन्होंने उनके कब्र का दौरा किया। 1288 और 1292 में इटली के एक यात्री मार्को पोलो के लेखों के द्वारा भी पुष्टि की गई है। 14वीं और 15वीं शताब्दी के अन्य यूरोपीय यात्री भी भारत में संत थॉमस चर्च का उल्लेख करते हैं।

2. पश्चिमी परम्परा : सीरिया के एदेस्सा में तीसरी सदी के मध्य में लिखा गया *"दि एक्टस ऑफ थॉमस"* संत थॉमस के भारत आने का वर्णन करता है। इस प्राचीन अज्ञात–लेखकीय पुस्तक के अनुसार :

   ए. 12 शिष्यों ने, उनमें से किसको कहां जाना चाहिए इसका निर्धारण करने के लिए चिट्ठियां डालीं। संत थॉमस को भारत जाने को कहा गया। उन्होंने सुस्थापित व्यापारिक मार्ग का अनुसरण किया और प्रथम सदी के मध्य में किसी समय भारत पहुंचे।

   बी. राजा गोण्डाफोरस का एक व्यापारी राजा के लिए एक महल का खाका खींचने और बनाने के लिए उसे भारत ले आया। थॉमस ने धन तो ले लिया किन्तु महल बनाने की अपेक्षा उसे कंगालों में बांट दिया। जब राजा महल देखने आया तब थॉमस ने कहा कि उसके लिए स्वर्ग में महल बन रहा था। अतः उसे कैदखाने में डाल दिया गया। परन्तु इसी समय राजा का भाई "गाद" रोगी हो गया और उसने एक स्वप्न में देखा कि वह मर गया और स्वर्ग ले जाया गया। वहां स्वर्गदूतों ने उसे संत थॉमस के द्वारा राजा के लिए बनवाया गया एक भव्य महल दिखाया। उसने राजा से बात की और संत थॉमस को कैदखाने से बाहर निकलवाया और राजा और उसका भाई दोनों ने बपतिस्मा लिया और मसीही बन गए। तब थॉमस वहां रूक गया और अनेकों को प्रभु के पास ले आया।

   सी. आगे चलकर वह राजा मजदई के राज्य में चला गया। यहां भी वह अनेक लोगों को प्रभु के पास लाने में सफल रहा किन्तु राजा के आदेश पर मयलापुर में भाला मारकर उसकी हत्या कर दी गई। उसे मयलापुर की उस छोटी सी पहाड़ी पर दफ़नाया गया परन्तु उसकी अस्थियां चुरा ली गईं और पश्चिम ले जाई गईं

(*"एक्टस् ऑफ थॉमस"* में उल्लेखित राजाओं और राज्यों को पहचानने के अनेक प्रयास किए जा चुके हैं। इस परम्परा को एतिहासिक महत्व तब तक नहीं मिला जब तक कि 19वीं सदी में उत्तर पश्चिम भारत में गोन्डाफोरस और उसके भाई गाद के नाम वाले कुछ सिक्के नहीं मिल गए।)

ख. संत बार्थोलोम्यू : चौथी सदी के आरम्भिक वर्षों में यूसेबियस ने लिखा कि प्रेरित बार्थोलोम्यू (बरतुल्मै) भारत आया। इस परम्परा के अनुसार वह पश्चिम भारत आया (अर्थात मुम्बई प्रक्षेत्र में) और कल्याण में एक कलीसिया की स्थापना किया। इस क्षेत्र में एक यहूदी व्यापारी बस्ती की उपस्थिति से इन्कार नहीं किया जा सकता है। 180 ई.स. के आसपास अलेक्ज़ेंड्रिया के बिशप देमेत्रियस ने पारटेनुस को इस क्षेत्र में भेजा और उसे इब्रानी में लिखी संत मत्ती के सुसमाचार की एक प्रति यहां मिली जिसके लिए विश्वास किया जाता है कि वह प्रेरित के द्वारा वहां छोड़ी गयी थी। महान विश्व यात्री कॉसमॉस इंडिकोप्यूसटस, जो ई.स. 522 में भारत आया, अपने प्रसिद्ध "यूनिवर्सल क्रिश्चियन टोपोग्राफी" में लिखता है, "कलियाना (कल्याण) में पर्शिया के बिशप के द्वारा नियुक्त एक बिशप था।" तौभी संत बार्थोलोम्यु के द्वारा स्थापित चर्च का कोई अस्तित्व नहीं है। का. ना. सुब्रमण्यम लिखते हैं कि कालांतर में बार्थोलोम्यू के मसीही अपने आसपास के प्रभावों में मिल गए होंगे।

# पाठ 4

# अध्याय 2

# ईसवी सन् 800 तक मसीहीयत

क. पूर्व का मिशन : संत थॉमस की मृत्यु के पश्चात् अगले 92 वर्षों तक भारत और मलाबार में कोई स्थापित और स्वीकार्य नेतृत्व नहीं था। इस समय से लेकर प्रेरित काल के प्रथम दो सदियों तक का कोई लिखित दस्तावेज नहीं मिलता है। परन्तु भारत की कलीसिया का सीरिया (मेसोपोटामिया) और फारस की कलीसिया के साथ कुछ सम्बंध था जो वर्तमान में पाए जाने वाले मसीही समाज से प्रमाणित होता है। उसकी कलीसियाई भाषा सीरियक बोली में थी और आगे चलकर उसे सीरिया से बिशप मिले। आज भी संत थॉमस मारथोमा चर्च में पवित्र प्रभु भोज की आराधना के लिए सीरियक भाषा का ही उपयोग किया जाता है।

1. 3री सदी (ई.स. 250–300) में मेसोपोटामिया के बिशप भारत आए और अनेकों को सुसमाचार सुनाया। उन्होंने भारत में स्थित अनेक मसीही समुदायों में दौरा भी किया।

2. एक वृतान्त के अनुसार फारस के जॉन वह बिशप थे जो ई.स. 325 के नाइसीन काऊंसिल में फारस और विस्तृत भारत की कलीसियाओं का प्रतिनिधित्व किए थे।

3. ई.स. 354 में रोमी सम्राट कॉन्सटेंटीन ने लाल और अरब सागर के तटों पर पायी जाने वाली कलीसियाओं के लिए एक भारतीय बिशप थियोफिलस को, जो मालदीव के निवासी थे (तब मालदीव भारत का अंग था), मसीही राजदूत बनाकर भेजा। दक्षिण अरब में कार्य समाप्त कर लेने के पश्चात वे भारत आए और भारत में पायी जाने वाली कलीसियाओं की परम्पराओं में सुधार किया।

4. ई.स. 425 में एदेस्सा जब पूर्वी सीरियन चर्च के लिए थियालॉजिकल अध्ययन केन्द्र बन रहा था, रोमियों के ऊपर सीरियन कामेन्ट्री में एक नोट मिलता है, "मार कोमाई के द्वारा डैनिएल नामक एक भारतीय प्रीस्ट की सहायता से इस पत्री का यूनानी से सीरियक भाषा में अनुवाद किया गया है।"

5. ई.स. 470 में फारस के रिवारदाशीर के बिशप माना ने यूनानी से सीरियक भाषा में अनुदित सभी पुस्तकों को भारत के मसीही पुरोहित के पास भेजा।

6. ई.सन 522 में अलेक्ज़ेन्ड्रिया के एक मसीही व्यापारी ने अपने स्थल–वर्णन में लिखा कि भारत में मसीही थे और उनका फारस से घनिष्ठ सम्बंध था।

यह सब दिखाता है कि आरंभिक समय ही से भारत में मसीही थे। यह भी दिखाता है कि आरंभिक समय ही से मसीही फारस से घनिष्टता से जुड़े हुए थे। इतिहास भी लोगों के फारस से दक्षिण भारत प्रवास का वर्णन करता है।

ख. मसीहियों का भारत प्रवास : वह पूर्वी सीरियन कलीसिया थी जिसने भारतियों और फारसी मसीहियों के बीच निकट सम्बंध स्थापित किया। प्रवास के प्रमुख कारण व्यापार और सताव थे।

1. पहला प्रवास : ई.स. 345 में हुआ। लगभग 350 परिवार एक सीरियन व्यापारी काना के थॉमस के नेतृत्व में कुछ पादरियों के साथ भारत आए। 1221 में जेकोबाइट मारथोमा चतुर्थ ने सूचित किया कि संत थॉमस एदेस्सा के मेट्रोपोलिटन और एदेस्सा के राजा को स्वप्न में यह निवेदन करते हुए दिखाई दिए कि वे आएं और आत्मिक रूप से कमजोर भारतीय मसीहियों की सहायता करें।

प्रथम प्रवास को प्रमाणित करने वाले निम्नलिखित प्रमाण मिलते हैं :

ए. 1599 में पुर्तगाली कुछ ताम्रपत्र ले गए जिन पर मलाबार के राजा के द्वारा प्रवासी मसीहियों और उनके आर्चबिशप मेन्जिस को प्रदान किए गए कुछ विशेषाधिकारों का उल्लेख किया गया था।

बी. मलाबार के राजा के द्वारा क्रेंगानोर क्षेत्र में अलग से दी गई भूमि पर सीरियनों की बस्ती आज भी है।

2. दूसरा प्रवास : ई.स. 823 में मार सापोर और मार पारूत नामक दो बिशप सब्रिस्टो नामक यशस्वी व्यापारी और कुछ अन्य लोगों के साथ केरल के कुल्लाम (क्वीलोन) आए और बस गए। उनके निवेदन पर राजा सक्कीरबिट्टी ने उन्हे कुल्लाम जिले में भूमि प्रदान की जिस पर उन्होंने एक चर्च भवन बनाया और बस्ती बसाया। जेकोबाइट मारथोमा चतुर्थ ने 18वीं सदी में इस पर लिखा है।

द्वितीय प्रवास के निम्नलिखित प्रमाण मिलते हैं :

ए. तमिल, मलयालम, पहलवी (फारसी भाषा) और अरबी भाषा में लिखे और यहूदी हस्ताक्षर युक्त 5 ताम्रपत्र (इनमें से तीन कोट्टायम के जेकोबाइट सेमिनरी में और दो तिरूवल्ला के मारथोमा चर्च में पाए जाते हैं)।

बी. 7वीं और 8वीं शताब्दी के पत्थर के पांच नक्काशीदार क्रूस कोट्टायम और केरल के अन्य स्थानों में पाए गए हैं जिस पर पहलवी भाषा में लिखा हुआ है जो मलाबार कलीसिया का सीरियन मसीहियों से सम्बंध दिखाता है।

# पाठ 5

# अध्याय 3

# मध्य काल (ईसवी सन् 800–1500) में मसीहीयत

क. परिचय : 4थी सदी में पूर्व की कलीसिया ने फारसियों के हाथों अत्याधिक सताव का सामना किया। 5वीं सदी में मसीहियों ने जीने–बसने का सीमित अधिकार तो प्राप्त किया किन्तु एक बरदाश्त किए गए समाज के रूप में और एक ऐसी सरकार के अधीन जो मसीहीयत की विरोधी थी। 7वीं शताब्दी में इस्लाम के उद्‌भव के साथ पूर्व के मसीहियों की स्थिति बद् से बद्‌तर होती चली गई। मेसोपोटामिया और फारस अरबी मुसलमानों के शासन के अधीन आ गए। मसीहियों को नयी कलीसियाओं की स्थापना करने से रोक दिया गया और उन्हें एक विशेष कर देना पड़ता था। ऐसे दबाव के कारण इस्लाम के पक्ष में धर्मत्याग भी होने लगा। फिर भी अपनी उच्च शिक्षा के कारण मसीहियों की मांग बनी रही और वे कुछ प्रभाव भी डाल पाए। आगे चलकर क्रूसेड्स (अर्धचन्द्र और क्रूस के मध्य धर्मयुद्धों) ने स्थिति को और भी बिगाड़ दिया और सताव बढ़ गया जिसने कलीसिया को और भी अधिक कमजोर कर दिया।

तुर्कों और मंगोलों के अधीन : 11वीं और 12वीं शताब्दियां मध्य एशिया के लिए नए उद्‌भवों और अभियानों का समय रही हैं। 11वीं शताब्दी में मुस्लिम सेल्यूक तुर्कों ने फारस पर आक्रमण किया और सम्पूर्ण पश्चिम एशिया में फैल गए। 13वीं शताब्दी में चंगेज खान के नेतृत्व में संगठित मंगोल चीन से लेकर मध्य एशिया से रूस तक बड़े भूभाग को जीत गए। इनमें से कुछ मंगोल के मसीही थे। 15वीं शताब्दी में तैमूर लंगड़ा नामक एक मुस्लिम ने चीन और मध्य एशिया से मसीहियों का पूरा–पूरा सफाया कर दिया। कलीसिया जो एशिया के अनेक भागों में फैल गई थी वह मेसोपोटामिया और भारत के कुछ हिस्सों में छोटे–छोटे अमहत्वपूर्ण समाजों में सिमट गई। पूरा उत्तर भारत मुस्लिम शासन के अधीन आ गया था। सिर्फ मलाबार के मसीहियों को क्षति नहीं पहुंचाई गई, वे सिर्फ अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए।

ख. भारत की कलीसिया अलग रह गई : आरंभिक शताब्दियों मे भारत में कलीसिया की वृद्धि हुई। थाने (मुम्बई के पास), साईमुट (केरल), सोपारा (गुजरात), सिन्ध, नीलगिरी, मयलापुर और कश्मीर में विश्वासी पाए जाते थे। परन्तु 15वीं शताब्दी के अंत तक सिर्फ केरल में संत थॉमस मसीही रह गए। इस कठिन दौर में भारत की कलीसिया पूर्व से बिल्कुट कट कर रह गई। मुसलमानों और हिन्दुओं के सताव और उचित देखभाल या चरवाही की कमी और पश्चिम से अगुवों के न भेजे जाने के कारण उनकी संख्या कम हो गई। अनेक वर्षों तक कोई बिशप भी नहीं थे। परन्तु एशिया के अन्य स्थानों की कलीसियाओं की अपेक्षा केरल की कलीसिया पर कम प्रभाव पड़ा। 9वीं से 16वीं शताब्दी तक मलाबार के मसीही हिन्दु राजाओं की छत्र छाया में कुछ निश्चित स्वतंत्रता का आनन्द उठाए। एक प्रारंभिक लेख के अनुसार उनका अपना राजा भी था जिसका राज्य उसके उत्तराधिकारी के रहते तक चला। उसके वारिस न होने पर उसका राज्य कोची के राजा को चला गया।

ग. यात्रियों के रिपोर्ट भारत में मसीही कलीसिया की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं : क्रूसेडों के पश्चात् 13वीं शताब्दी से पश्चिमी कलीसिया (रोमन कलीसिया) से और सामान्य यूरोपीय यात्री भारत आने लगे। क्रूसेडों ने यूरोप और पूर्व को निकट ला दिया। तुर्क और मंगोल राज्यों ने पश्चिम और पूर्व के मध्य पुनः एक बार मार्ग खोल दिया। रोम के पोप ने मंगोलों के साथ राजनैतिक सम्बंध स्थापित करने का प्रयास किया।

1. 1289 में जॉन मोन्टे कॉरवीनो को पोप का दूत बनाकर भारत भेजा गया था। वह मयलापुर के निकट 13 महीने रहे और 100 लोगों को बपतिस्मा दिए। यहां से वे चीन चले गए।

2. जॉर्डन नामक एक डॉमीनिकन भिक्षु, पहले 1321 और 1323 के मध्य और तब 1330 में, भारत आया। वह चार अन्य फ्रांसिस्कनों के साथ थाने (मुम्बई) के निकट उतरा। वह गुजरात के भरूच गया और तब वापस थाने आया जहां वह ढाई वर्ष तक रूका। उसने मुख्यतः सूरत, भरूच और सपोरा में लोगों को बपतिस्मा

दिया। भारत में पुर्तगालियों के आगमन के पूर्व उसे लैटिन कलीसिया का संस्थापक कहा जा सकता है।

घ. समापन : 15वीं शताब्दी में पूर्व की कलीसिया भयावह अवशेष में सिमट गई थी। मलाबार मसीहियों से संवाद समाप्त हो गया था। भारतीय मसीही पीढ़ियों तक बिना चरवाहे के रह गए थे। सिर्फ एक मात्र मसीही समाज, अर्थात मलाबार (केरल) के लोग इस समय फल–फूल रहे थे।

# पाठ 6

## अध्याय 4

## प्रथम 1500 वर्षों के लिए भारत में मसीहीयत के इतिहास का पुनरावलोकन

क. सीरियाई प्रवास के पूर्व :

1 संत थॉमस ई.स. 52 में भारत आए। वे मुजरिस के तट पर उतरे।

2. उन्होंने 7 कलीसियाओं की स्थापना की, मुख्यतः उन्हीं के मध्य के ब्राह्मण परिवारों से स्थानीय अगुवे नियुक्त किए।

3. वे मयलापुर गए और वहां कुछ कलीसियाएं स्थापित की।

4. ऐसा विश्वास किया जाता है कि वे चीन चले गए और वापस आने के शीघ्र पश्चात् ब्राह्मणों के द्वारा मलयापुर की पहाड़ी पर उनकी हत्या कर दी गई जहां उनकी कब्र आज भी पाई जाती है।

5. कलीसिया 92 वर्षों तक स्थानीय प्राचीनों के नेतृत्व में स्पष्टतः बिशपविहीन बनी रही। अन्य अलग–थलग मसीहियों से उनका कोई सीधा सम्बंध नहीं था।

6. इस अवधि में उनके बारे कुछ अधिक जानकारी नहीं मिलती है कि उन्होंने स्वयं को कैसे व्यवस्थित किया था या वे दूसरों को सुसमाचार कैसे सुनाते थे।

ख सीरियाई मसीहियों का प्रवास :

1. सीरिया से आने वाले मसीहियों के द्वारा भारत की कलीसिया को बल मिला। दो प्रवास हुए। प्रथम प्रवास ई.स. 345 में काना के थॉमस के नेतृत्व में हुआ। दूसरा प्रवास ई.स. 833 में हुआ।

2. उस समय से भारत की कलीसिया पर सीरियाइयों का दबदबा बढ़ गया। उनका समाज में ऊँचा स्थान था और वे अपने विश्वास में समर्पित दिखाई देते थे।

3. वे अधिकतर मलाबार (केरल) में, क्रंगानोर (उत्तर में) और क्वीलोन (दक्षिण में) बस गए, कुछ गोआ, साइमुर (चॉल), थाना (कल्याण), सोपारा, गुजरात और सिन्ध और पश्चिमी तट के किनारे किनारे बस गए। परन्तु आगे चलकर इनमें से अनेक पीछे हट गए।

4. पूर्वी समुद्र तट पर मयलापुर में नीलगिरी के दक्षिणी ढलान की अनेक चट्टानों पर खोदे गए क्रूस मिले हैं।

5. उत्तर में : तन्सके के निकट कश्मीर में जहां चट्टानों पर लिखे गए आज भी पाए जाने वाले लेख सीरियाई मसीहियों की बस्ती होने की गवाही देते हैं, जिसके लिए माना जाता है कि वह ई.स. 800 में अस्तित्व में थी।

ग. संगठन :

1. 1301 की एक वैटिकन पाण्डुलिपि के अनुसार भारत की कलीसिया "भारत की पवित्र कलीसिया के मेट्रोपोलिटन और निदेशक" के अधीन थी जिसका मुख्यालय क्रंगानोर था।

2. वहां अनुधर्माध्यक्ष बिशप थे या नहीं यह पक्का नहीं है। शायद कुछ अवसरों पर क्वीलोन और मयलापुर में थे। सीरियन स्त्रोतों के अनुसार सिलोन, मालदीव और स्कोत्रा के बिशप इस मेट्रोपोलिटन के अधीन रहे होंगे।

3. अनेक कारणों से मेट्रोपोलिटन का उत्तराधिकारी बनना सदैव कठिन था :

   ए. उसका अभिषेक फारस में होना चाहिए,

   बी. पूर्व और पश्चिम के मध्य संवाद कठिन था, और

   सी. इस्लामी शासन के कारण मेसोपोटामिया की कलीसिया आत्मिक और भौतिक दोनों विषयों में कमजोर थी।

4. मेट्रोपोलिटन को व्यापक आत्मिक और भौतिक दोनों अधिकार दिए गए थे। कैथोलिको द्वारा अभिषिक्त और नियुक्त होने के कारण वे उन्हें कर और भेंट भेजने के लिए जिम्मेदार थे।

5. आमतौर पर एक अविवाहित स्थानीय प्रीस्ट ही उनका दाहिना हाथ होता था जो आर्च डिकन हुआ करता था। यह व्यक्ति काफी प्रभाव रखता था, विशेषकर उन अवसरों पर पह कलीसिया का प्रधान हुआ करता था जब मेट्रोपोलिटन लम्बे समय के लिए अनुपस्थित हुआ करते थे।

6. आर्च डिकन कलीसियाओं में पादरियों की नियुक्तियां और पवित्र सेवा के लिए उम्मीदवारों की अनुशंसा किया करता था। वह कलीसिया की सम्पत्तियों का प्रबंध भी करता था।

7. वह सब मसीहियों का प्रमुख समझा जाता था। यह उसे स्थानीय राजकीय अधिकारियों की नजरों में सम्मान दिलाया करता था, जिन्हें राजा कहा जाता था, जो कोचीन के राजा के प्रति वफादार हुआ करते थे।

8. 16वीं शताब्दी आते–आते आर्च डिकन का कार्यालय कुराविलंगड़ के पकालोमोत्तम कुटुम्ब का पारिवारिक कार्य बन गया था।

9. "पैरिश काऊँसिल" स्थानीय कलीसियाओं की सम्पत्ति का और समाज के सम्पूर्ण धार्मिक जीवन का प्रभारी था।

# पाठ 7

अध्याय 4 (क्रमशः)

घ. आरम्भिक मसीहियों की परम्पराएं

1. अधिकतर आरम्भिक मसीही कठिन परिश्रम करने वाले किसान और कुछ ही व्यापारी थे जो काली मिर्च और अन्य मसालों के उत्पादन, विक्रय और निर्यात में व्यस्त थे। जॉन डी. मार्जिनली ने कहा, "थॉमस मसीही वजन करने वाले कार्यालयों के स्वामी बनकर व्यापार पर नियंत्रण रखते थे।"

2. ऐसे लगता है कि कुछ अवसरों पर उनकी अपनी सेनाएं भी हुआ करती थीं। वे केरल के छोटे राजाओं या सामन्तों के अधीन एक तरह के स्वराज का आनन्द भी उठाते थे। 15वीं और 16वीं सदी में मसीही सैनिक विजयनगर के राजाओं की सेवा में भी रहे हैं।

3. वे ऊँची जातियों के समकक्ष, यदि ब्राम्हण के बराबर नहीं तो कम–से–कम नायरों के बराबर, माने जाते थे और स्थानीय यहूदियों और मुसलमानों से ऊँचे गिने जाते थे।

4. उन्हे बहुधा उनकी स्थिति के अनुसार मपिलास (महान पुत्र), पारूमाला (सरदार या प्रधान) इत्यादि कहा जाता था। वे हिन्दुओं के लगभग 18 कारीगर जातियों के संरक्षक स्वीकार किए जाने लगे।

5. ई. आर. हैम्बाई कहते हैं, "उनकी धार्मिक पहचान का इतना सम्मान था कि बहुधा उन्हें किसी हिन्दु मन्दिर के पास निवास करने बुलाया जाता था ताकि जब अवसर हो तो उन्हे पवित्र पात्रों को स्पर्श करके शुद्ध करने के लिए बुलाया जा सकें। उनमें अनेक हिन्दु परम्पराएं पाई जाती थीं जिसे उन्होंने समय–समय पर अपने जीवन में आत्मसात कर लिया था। उनमें से कुछ परम्पराएं ये हैं :

   ए. त्योहार, मिट्टी देने के दिन और पुण्य तिथियों पर किए जाने वाले धार्मिक भोजों का आयोजन चर्च भवन के भीतर किया जाना।

   बी. भेंटों की नीलामी कर दी जाती थी। उससे मिलने वाला धन गरीबों को दे दिया जाता था और कलीसिया के कार्य में लाया जाता था। विशेष महत्वपूर्ण भोज के दिन भक्तों और चढ़ावा चढ़ाने वालों को प्रसाद दिया जाता था।

   सी. कलीसिया भवन पूर्वी सीरियाई और हिन्दु शैली के मिश्रण में बनते थे। सजावट स्थानीय हिन्दु कलाकारों की प्रेरणा से, विशेषकर केरल के स्थानीय मंदिरों की तरह होते थे।

   डी. चर्च भवनों के पश्चिमी प्रवेश द्वारों पर एक ध्वजाधारी सदा नियुक्त रहता था।

   ई. चर्च भवनों पर घंटा लगाना – भक्तों को आराधना में बुलाने के लिए घंटों को बजाया जाता था।

   एफ. वे आराधना में कसदी प्रथाओं का उपयोग यह सोचकर किया करते थे कि वे प्रेरितों के समय से चली आ रही हैं। और बपतिस्मा के समय दिए जाने वाले सब नाम नया नियम या पुराना नियम के सन्तों के नामों तक ही सीमित होते थे।

   जी. वे प्रभु भोज के लिए खमीरीकृत रोटी और वाईन का उपयोग किया करते थे। ये ना होने पर चांवल की रोटी और नारियल से बने वाईन का उपयोग किया करते थे।

   एच. वे चर्च भवनों का सम्मान कलीसिया के बराबर ही किया करते थे और लगभग उतने ही अन्धविश्वास से क्रूस को सम्मान दिया करते थे।

   आई. चटकीले लाल, हरे, सफेद और सुनहरे रंगों वाले छातों के साथ जुलूस निकाले जाते थे जो आज भी

उपयोग में लाए जाते हैं। इनमें से एक राजकीय चिन्ह भी होता था जिसे पुराने विशेषाधिकार के चमकदार प्रमाण के रूप में दिखाया जाता था। बड़े त्योहारों पर पुरोहित या प्रीस्ट के हाथों में क्रूस उठाकर, और विशेष रीति से जिल्द चढ़ाई गई बाइबलों के प्रदर्शन के साथ, जुलूस निकलता था। यह सब कलीसियाओं में आम बात थी।

जे. कोडूंगालूर से 10 किलोमीटर दूर मलंकारा की तीर्थयात्रा भी पर्याप्त चलन में थी जहां प्रति वर्ष 21 नवंबर को संत थॉमस के वहां आने का उत्सव मनाया जाता था।

के. पादरी आमतौर विवाह किया करते थे। वे किसी नामी शिक्षक के नीचे धर्मशास्त्र, उपासना–पद्धति और कुछ स्वीकार्य नियमों का मौलिक प्रशिक्षण प्राप्त करते थे।

एल. धर्म–संघ के लिए उम्मीदवारों का चयन आमतौर पर उनकी कलीसियाएं किया करती थीं और आर्च–डिकन उनकी सिफारिश बिशप को किया करते थे।

एम. प्रीस्ट को कारथानार कहा जाता था; वे बहुधा एक ही परिवार से आते थे और उनमें से कुछ अपनी वंशावली को संत थॉमस तक ले जा सकते थे।

एन. प्रीस्ट लोगों की आमदनी मुख्यतः कलीसिया की सम्पत्ति, भेंटों, अंतिम क्रियाकर्म के लिए लिए जाने वाले शुल्कों से और पवित्र धर्म विधियों को पूरा करने के लिए कलीसिया को दिये गये शुल्कों से होती थी।

ओ. थॉमस मसीही (सीरियन मसीही) सदियों से वृद्धि करते रहे हैं। कुछ साधु तो सूदूर पूर्व अर्थात् चीन तक और मध्य एशिया तक गए। 10वीं और 11वीं शताब्दी के दरम्यान उन्होंने मालदीव द्वीप समूह में भी सुसमाचार पहुंचाने का प्रयास किया।

पी. उनके मध्य चार प्रमुख अतिप्राचीन परिवार पाए जाते हैं जिनके ऊपर नए सदस्यों को समाज में लाने और बढ़ाने की जिम्मेदारी रही है।

क्यू. फिर भी 15वीं शताब्दी के अन्त तक अनेक कारणों से, जिनमें इस्लाम का प्रसार प्रमुख कारण है, उनके उत्साह में कमी आ गई। वे तब भी अच्छे से स्थिर बने रहे, किन्तु केरल के बाहर उनके समुदायों में हानि के साथ पूर्ण क्षति भी देखी गई।

# पाठ 8

## अध्याय 5

## ईसवी सन् 1500–1705 तक भारत में मसीहीयत

क. पुर्तगाली शासन :

15वीं शताब्दी के अन्त में पुर्तगालियों के, और 16वीं शताब्दी के आरम्भ में मुगलों के, भारत आगमन ने भारत में कलीसिया को बदल दिया।

1, एतिहासिक पृष्ठभूमि :

ए. 21 अप्रेल 1526 को पानीपत के युद्ध में सुल्तान इब्राहीम लोधी पर बाबर की विजय से भारत में मुगल राज का आरम्भ हुआ। यद्यपि वे मुस्लिम थे तौभी वे दूसरे धर्मों के प्रति सहनशील थे और उनके राज में न्याय और विकास की दशा अच्छी थी।

बी. 15वीं शताब्दी, समुद्री यात्राओं और यूरोपीयों के राज्य विकास का दौर था। स्पेन और पुर्तगाल समुद्री खोज के अग्रगामी थे। पुर्तगाली व्यापार के लिए भारत आए थे।

2. पुर्तगाली बसाहट :

ए. बार्थोलोम्यू डायज़ ने 1487 में अफ्रीका महाद्वीप के किनारे से भारत का मार्ग खोजा। 11 वर्षों पश्चात् 1498 में वास्को–डि–गामा ने "केप ऑफ गुड होप" होते हुए समुद्री यात्रा की और मलाबार तट पर कालीकट में लंगर डाला। अन्य पुर्तगाली भी आए और व्यापार के लिए भारत में बस गए।

बी. प्रथम पुर्तगाली राज्यपाल पेड्रो अलवारिस केब्राल 1500 में क्रंगानोर आए और व्यापार केन्द्र स्थापित किए। दूसरा राज्यपाल अलबूकरक्यू (1509–1515) ने बीजापुर के सुल्तान से गोवा छीन लिया और गोवा को भारत में पुर्तगाल का मुख्यालय बनाया।

सी. 1531 में उन्होंने दियु, चॉल, सालसेट, मुम्बई, कोचीन, क्रंगानोर और क्वीलोन को भी जीत लिया। उनकी बस्तियां टूटीकोरिन, नागापट्टनम और मयलापुर तक फैल गईं।

डी. पुर्तगाली अपने साथ स्त्रियां नहीं लाए, इसके बज़ाय उन्होंने भारतीय स्त्रियों से विवाह किए। भारतीयों को कैथोलिक विश्वास में बदला गया और बच्चों का लालन–पालन कैथोलिक विश्वास में किया गया। इस प्रकार पुर्तगाली बस्तियों में बड़ी संख्या में इंडो–पुर्तगाली जनसंख्या बढी।

इ. ई.सन् 1493 के पोप अलेक्जेन्डर षष्टम के प्रसिद्ध आदेश में अटलांटिक महासागर के पूर्व के सब नए जीत गए क्षेत्र लाके पुर्तगाल को दिए गए। पोप के आदेशानुसार पुर्तगाली अपने शासन के अधीन के क्षेत्रों में मसीहीयत के प्रचार–प्रसार में सक्रिय रूचि लेने लगे। पुर्तगालियों ने मसीहीयत के प्रचार के लिए राजनैतिक शक्ति का सहारा लिया। सिर्फ मसीही लोग ही सरकारी कार्यालयों में नियुक्त हो सकते थे। धर्मपरिवर्तन कर चुके लोगों को राजकीय संरक्षण मिलने लगा।

एफ. इसके अतिरिक्त, राजाओं को "उनके अधिकार के देशों और द्वीपों में भले और ईश्वर का भय माननेवाले, और स्थानीय निवासियों को कैथेलिक विश्वास और नैतिक शिक्षा देने के लिए शिक्षित, प्रशिक्षित और दक्ष ऐसे लोगों को भेजने की जिम्मेदारी दी गई।"

जी. भारत में पुर्तगाली जीवन के समकक्ष जीवन शैली, जिसके वे अभ्यस्त थे, विकसित करना उनका लक्ष्य था। शीघ्र ही गोवा बड़े चर्च भवनों का शहर बनकर उभरा। 1534 में गोवा को पुर्तगाली बिशप का आधिकारिक

अधिष्ठान बना दिया गया।

एच. 15वीं और 16वीं सदियों में पोप को मसीह का एकमात्र प्रतिनिधि माना जाता था जिसके पास पृथ्वी के सब राज्यों के राजनैतिक और धार्मिक दोनों अधिकार थे।

3. पैड्रोआडो और रोमन कैथोलिक कलीसिया का विस्तार

ए. 1455 में पोप निकोलस पंचम के रोमानस पॉन्टीफेक्स नामक प्रसिद्ध आदेश ने घोषित किया कि "जितने देश खोज लिए गए हैं, और जो भविष्य मे खोजे जाएंगे, वे सदा के लिए पुर्तगाल के राजा के होंगे।" यह उस पैड्रोआडो का आधार था जो पोप लिओ ने पुर्तगाल को 1514 में दिया था। पैड्रोआडो का अर्थ है, "बिशप और अन्य पुरोहिताई वर्ग में जाने के लिए उम्मीदवारों के चयन का अधिकार और उसके अनुसार कार्यालयीन कर्मचारियों की नियुक्तियां और कलीसियाओं और मिशनों का संरक्षण रखने की जिम्मेदारी।"

बी. अतः "पैड्रोआडो" के अधीन कैथोलिक कलीसिया की प्रगति सरकार की जिम्मेदारी बन गई। 1555 में मिशन कार्यों का उचित गठन किया गया। 16वीं शताब्दी के आरम्भ से ही विभिन्न सेवा–दल आने लगे : फ्रांसिसकन्स – 1518; जेसुइट्स – 1542; डॉमिनिकन्स – 1548; ऑगस्टीनीयन्स – 1572।

सी. 1670 आते तक गोवा में 85 प्रतिशत रोमन कैथोलिक थे। उन्होंने कोचीन, कालीकट, कन्नानूर, क्रंगानोर, क्वीलोन, मयलापुर और कनारा तक अपना सीमा क्षेत्र बढ़ा लिए। इस अभियान को अच्छा संगठन बनाने के लिए कलीसियाई सेवकाई का धर्माधिकारी–तन्त्र खड़ा किया गया।

# पाठ 9

अध्याय 5 (क्रमशः)

ख. जेसुइट मिशन

1. फ्राँसिस जेवियर का जीवन और सेवा :

(1) पुर्तगाली मिशनरियों में सबसे प्रमुख जेसुइट संत फ्राँसिस जेवियर, (1506–1552) रहे, जिनके अथक और कठिन परिश्रम ने हजारों को कलीसिया में मिलाया।

(2) फ्राँसिस जेवियर 19 वर्ष की आयु में पेरिस विश्वविद्यालय में अध्ययन के लिए गए, वे स्पेन के कुलीन परिवार से आते थे। वहां अपने 11 वर्षों के दरम्यान वे लोयोला से प्रभावित हुए और उन छः में से एक थे जिन्होंने लोयोला के साथ 1540 में सोसाइटी ऑफ जीजस का गठन किया। इस सोसाइटी को "आर्डर ऑफ द जेसुइट्स" भी कहा जाता है।

(3) पुर्तगाल के राजा ने पोप से निवेदन किया था कि कुछ जेसुइट्स को भारत भेजा जाए। पुर्तगाल के राजा के निवेदन पर पोप ने प्रथम जेसुइट के रूप में फ्राँसिस जेवियर को भारत भेजा।

(4) 13 माह की समुद्री यात्रा के पश्चात् जेवियर 6 मई 1542 को गोवा के समुद्र तट पर उतरे।

(5) उन्होंने स्वयं को रोगियों और कैदियों को देखने जाने के लिए समर्पित किया। वह घंटी बजाते हुए मार्ग में यह पुकारते हए निकलते थे, "विश्वासयोग्य मसीहियो! यीशु ख्रीष्ट के मित्रो, अपने पुत्र और पुत्रियों को और स्त्री–पुरूष दोनों ही तरह के दास–दासियों को परमेश्वर के प्रेम की पवित्र शिक्षा पाने के लिए भेजिए।" इस तरह उन्होंने शिक्षा देने के लिए एक बड़ी भीड़ जुटाई। वे अपना पाठ लयबद्ध तरीके से गाते, और बच्चों से उसे कंठस्थ करने कहते। तब वे प्रत्येक बिन्दु को सरलता से समझाते थे।

(6) तब जेवियर परावों (मोती–सीपी पकड़नेवाले मछुआरों) के मध्य कार्य करने के लिए चले गए जो पुर्तगाली सुरक्षा प्राप्त करने के लिए पहले ही मसीही बन चुके थे। परावा मसीही विश्वास मे अशिक्षित और अज्ञानी थे। इसलिए जेवियर अपने साथ तीन भारतीय सहायकों को ले गए और मनप्पाड़ में उतरे। पहले उन्होंने केप कोमोरिन और टूटीकोरिन के बीच फैले 30 गावों का दौरा किया। अपने दौरे के दरम्यान उन्होंने उन सब बच्चों और शिशुओं को बपतिस्मा दिया जो बपतिस्मा से वंचित थे।

(7) टूटीकोरिन के मसीही तमिल बोलते थे जो उन्हे नहीं आती थी। अनुवादकों की सहायता से उन्होंने विश्वास वचन, दस आज्ञाएं, प्रभु की प्रार्थना इत्यादि का तमिल में अनुवाद किया।

(8) धर्मशिक्षा सामग्री का तमिल में अनुवाद करने के पश्चात जेवियर बच्चों को दिन में दो बार एकत्र करते और उन्हे इसे मुखाग्र याद करवाते थे। उन्होंने बच्चों से कहा कि वे इसे दूसरों को सिखाएं।

(9) जेवियर लोगों को रविवार को एकत्र करते और उनसे प्रार्थनाओं का उनकी भाषा में दुहराव करवाते थे। अलग–अलग व्यक्तियों से विश्वास वचन और दस आज्ञाओं के बारे प्रश्न पूछने के पश्चात वे यीशु के नियम यह कहकर सिखाया करते थे कि उनका पालन करना ही उनके उद्धार की शर्त है। तब वे उन्हें बपतिस्मा देते थे।

(10) टूटीकोरिन में चार माह बिताने के पश्चात वे इसी प्रक्रिया का दुहराव करते हुए मसीही गांवों का नियमित दौरा करने लगे। उन्होंने एक या दो होशियार सदस्यों को धर्मशिक्षा देने के लिए जिम्मेदार नियुक्त किया।उन्होंने उन गांवों में जहां कुछ लोग पढ़ सकते थे, अपनी शिक्षा सामग्री की प्रतियां छोड़ीं।

(11) दैनिक आराधना मसीही समाजों की नियमित परम्परा बन गई। उन्होंने मिट्टी और फूस के साधारण आराधना स्थल बनाए।

(12) धर्मशिक्षा पानेवाले पुर्तगाली सरकार प्रदत्त आर्थिक सहायता प्राप्त करते थे जो उनके अभिकर्ता के द्वारा टूटीकोरिन से आती थी।

(13) लोगों के लिए जेवियर का व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था। वह बड़ी लगन से कार्य करते थे और शरणार्थियों के लिए राहत का प्रबन्ध करने और शांति व्यवस्था बनाने जैसे अन्य कार्यों को पूरा करने के द्वारा जरूरतमंदों की सहायता करने में व्यस्त थे।

(14) जेवियर ने ट्रावनकोर में मछुवारों की एक अन्य जाति मुक्कुवार लोगों की बड़ी संख्या को भी बपतिस्मा दिया।

(15) 1543 में यूरोप के दो, और गोवा के दो पुरोहित जेवियर से आ जुड़े। उनके सहायकों ने मन्नार द्वीप के अन्य समाज के लोगों को बपतिस्मा दिया।

(16) जेवियर ने कोचीन में एक यात्री से सुना कि इंडोनेशिया में मिशन कार्य के लिए सुअवसर था जहां दो स्थानीय शासकों ने बपतिस्मा लिया था और लोगों को शिक्षा देने के लिए पुरोहितों की राह देख रहे थे। जेवियर, जो हमेशा सुदूर कार्य क्षेत्र का सपना देखते थे, 1545 मे इंडोनेशिया चले गए।

(17) जेवियर 1548 में भारत वापस आए और अपने कार्य को व्यवस्थित करते हुए 15 महीने रहे। उन्होंने विभिन्न स्टेशनों में फ्रांसिस्कन फादर्स नियुक्त किए और उनके कार्य और व्यवहार के प्रति उन्हे सूक्ष्म निर्देश दिए।

(18) जेवियर 1549 में जापान चले गए। जब वे 1552 में भारत वापस आए तब सोसाइटी ऑफ जीजस ने उन्हें भारत और पूर्व के लिए "प्रॉविन्शियल" के रूप में नियुक्त किया। उन्होंने भारत में तीन माह बिताए।

(19) इसके पश्चात जेवियर ने पुनः चीन के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में उन्हे अत्यंत कठोर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा और वे बीमार हो गए और 22 दिसम्बर 1552 को जब वे चीन में प्रवेश करने का इंतजार कर ही रहे थे तो उनकी मृत्यु हो गई। उनका मृतक शरीर मलक्का और फिर गोवा ले जाया गया जहां उनकी समाधि आज भी विद्यमान है।

(20) पुनरावलोकन में, जेवियर ने भारत में रोमन कैथोलिक कलीसिया की नेंव रखी। यद्यपि उन्होंने पूर्व में सिर्फ दस वर्ष ही कार्य किया, (1542 से 1552 तक), वह एक स्थान से दूसरे स्थान और एक देश से दूसरे देश की यात्रा निरंतर करते रहे। उनमें लोगों को मसीह के पास लाने की पथप्रदर्शक लगन थी। मिशनरी कार्य को बनाए रखने के लिए उन्होंने सदा किसी–न–किसी को नियुक्त और प्रशिक्षित किया। दूसरी तरफ वे स्थानीय भाषा नहीं सीखे किन्तु अनुवादकों पर निर्भर रहे। जेवियर के द्वारा अनुचर बनाई गई परावा जाति अपने पड़ोसी समाजों पर कोई भी प्रभाव डालने में असफल रही।

# पाठ 10

अध्याय 5 (क्रमशः)

2. राबर्ट डी नोबिली का जीवन और सेवा

(1) 1605 ई.सन में भारत आए एक युवा जेसुईट फादर राबर्ट डी नोबिली के द्वारा मदुराई तमिलनाडु में एक भिन्न प्रकार की सेवा आरम्भ की गई।

(2) अपने आगमन के पश्चात् तमिल भाषा सीखने में उन्होंने सात महीने समर्पित किए। उन्हें मदुरै में कार्य करने कहा गया जो नायक राजाओं की राजधानी थी और वहां हिन्दु दर्शनशास्त्र और विज्ञान का गहन अध्ययन होता था।

(3) नोबिली उन दिनों में प्रचलित एक जेसुइट पुरोहित का साधारण चोग़ा पहने हुए 1606 में मदुरै आए। उस समय वहां पुर्तगाली जेसुइट फादर फर्नांडिस थे जो पुर्तगाली व्यवसायियों और स्थानीय परावा समाज के मण्डली की सेवा कर रहे थे।

(4) मसीहीयत को "परंगी मारगन" अर्थात नीची जाति का धर्म कहा जाता था। नोबिली ऊँची जाति के ब्राह्मणों को सुसमाचार पहुंचाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने स्वयं को भारतीय बनाने का दृढ़निश्चय किया। अपनी इस विधि पर चलने के लिए अपने उच्चाधिकारियों से अनुमति प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने एक भारतीय की तरह रहना आरम्भ किया और अपने लिए एक भारतीय रसोइया भी नियुक्त किया। उन्होंने अपने काले चोगे के बदले कावि वस्त्र, और चमड़े की जूतियों के बदले लकड़ी के खड़ाऊ धारण कर लिए। उन्होंने कठोर सन्यासी धर्म का पालन आरम्भ किया, चांवल, सब्जियां, फल, और दूध का भोजन दिन में मात्र एक बार करने लगे। उन्होंने स्वयं को फादर फर्नान्डिस और अन्य पुर्तगालियों से अलग कर लिया और सन्यासी बन गए।

(5) ब्राह्मणों के इलाके में मिट्टी का एक छोटा घर और प्रार्थना भवन (चैपल) बनाया गया।

(6) शिवधर्मा नामक एक तेलगू ब्राह्मण पंडित ने उन्हे संकृत की शिक्षा दी। उन्होंने पंडित को उन्हें वेदों की शिक्षा देने के लिए तैयार कर लिया। यह गुप्त में किया गया क्योंकि उन दिनों में वेदों का अध्ययन सिर्फ ब्राह्मण ही कर सकते थे। पंडित के साथ का उनका मेल–जोल 1609 में उसे बपतिस्मा तक ले आया। उस वर्ष नए विश्वासियों की संख्या बढ़कर 63 तक पहुंच गई।

(7) इस तरीके को "समायोजन विधि" (Accomodation Theory) कहा गया। नए विश्वासियों से मूर्तिपूजा को छोड़ और किसी भी व्यवहार जैसे भोजन, वस्त्र, जीवनशैली या जाति को त्यागने की मांग नहीं की गई थी। उनसे परावा समाज के साथ जुड़ने की आशा भी नहीं की गई थी।

(8) वे वैसे ही बने रहे जैसे अपने विश्वास परिवर्तन के पूर्व थे। जनेऊ और चोटी भी बरकरार रखा गया। इसके समान ही विशेष अवसरों पर स्नान, जनेऊ धारण करने का विशेषाधिकार और पोंगल नामक तमिल पूजा भी विद्यमान रखे गए सिर्फ उनके हिन्दु मंत्रों को मसीही प्रार्थनाओं से बदल दिया गया। इस प्रकार परिवर्तित लोग अपने परिवारों में रह पाने के योग्य थे।

(9) नोबिली ने सिखाया कि मसीही होने के लिए किसी को अपनी जाति बदलने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने स्पष्ट किया कि पौलुस प्रेरित ने भी रोमी साम्राज्य में दास प्रथा को अपरिहार्य मानकर उस प्रथा का विरोध नहीं किया।

(10) जब कार्य दूसरे स्थानों में फैलने लगा तब नोबिली ने नए मिशनरियों की मांग की। फादर लिटाओ 1609 में आए किन्तु कठोर जीवनशैली के कारण बने न रह सके। 1610 में फादर विको नामक एक और मिशनरी आए और डि नोबिली के साथ समर्पित सहकर्मी बन गए।

(11) नोबिली की शिक्षा पर प्रश्न उठे। कुछ ब्राम्हण उसे मदुरै से निष्काषित करना चाहते थे परन्तु अधिकांश विरोध

अन्य यूरोपियनों और मिशनरियों से हुआ। उन्होंने महसूस किया कि नोबिली ने हिन्दु संस्कृति के तत्वों को स्वीकार करने के द्वारा सच्चे मसीही सिद्धान्तों के साथ समझौता कर लिया था। कुछ नोबिली को परावा मसीहियों के साथ देखते थे। प्रतिउत्तर में उन्होंने नारियल के पत्तों पर लिखा कि वे न तो पुर्तगाली थे और न परन्गी और उन पत्तों को एक पेड़ पर टांग दिया, इस बात ने पुर्तगालियों को अत्यंत क्रोधित किया।

# पाठ 11

अध्याय 5 (क्रमशः)

2. राबर्ट डी नोबिली का जीवन और सेवा (क्रमशः)

(12) फादर फर्नान्डिस आरम्भ ही से नोबिली के "समायोजन विधि" को नापसन्द करते थे। किन्तु आर्च बिशप नोबिली का समर्थन करते थे। फर्नान्डिस ने 1610 में नवनियुक्त आगंतुक निकोलस पिमेन्टा को लम्बी शिकायत लिख भेजा कि नोबिली हिन्दु व्यवहारों को स्वीकार करने और अपने नवविश्वासियों को अलग रखने के द्वारा मसीहीयत को भ्रष्ट करने के दोषी थे। पिमेन्टा ने रोम में सोसाइटी के जनरल को लिखा। जब नोबिली को इसके विषय में सूचित किया गया तब उन्होंने स्वयं को दोष से बचाने और अपनी सेवा के पक्ष में निपुणता से तर्क रखे। उन दिनों में संचार व्यवस्था बहुत धीमी थी, अतः जनरल का प्रतिउत्तर 1613 में आया। उसमें वे कुछ अभ्यासों की भर्त्सना करते हुए दिखे और उन अभ्यासों को त्यागने की सलाह दिए ताकि ऐसे आरोप मिशन को बाधित न करें। इसलिये कि गोवा के बिशप विरोध में थे अतः नोबिली ने इस समायोजन विधि को चालू रखने की अनुमति के लिए पोप पॉल पंचम से अपील की। अंत में थियालॉजियनों की अधिकार प्राप्त समिति की रिपोर्ट के बाद 1623 में पोप ग्रेगोरी पन्द्रहवें ने नोबिली के पक्ष में निर्णय दिया। निर्णय यह था कि ब्राह्मण और ऊँची जाति के अन्य नए विश्वासी अपने कुलीन जन्म के बाहरी पहचान चिह्नों (जनेऊ, सिर मुण्डन और माथे पर चंदन का लेप) को तो धारण करना जारी रख सकते हैं किन्तु हिन्दु धर्मक्रियाओं और मंत्रोच्चार को त्यागना होगा। साथ ही जनेऊ मसीही प्रार्थना के साथ एक मसीही पुरोहित से ही प्राप्त किया जाना चाहिए। स्नान और माथे पर चंदन का लेप का उपयोग मंत्र के बिना स्वच्छता के लिए किया जाना चाहिए। यह निर्णय 1624 में भारत पहुंचा और इस प्रकार नोबिली चौदह वर्षों पश्चात् अपना केस जीत पाया और बिना किसी प्रतिबन्ध के अपना मिशन जारी रख सका। बपतिस्मा पर प्रतिबन्ध हटा लिया गया।

(13) नोबिली अपना कार्य दूसरे स्थानों में भी फैलाने लगे। उन्होंने 1623 में फादर विको को मदुरै कलीसिया का जिम्मा लेने का आग्रह किया और तब तिरूचिरापल्ली और सालेम इत्यादि स्थानों में चले गए। उन्होंने सालेम और तिरूचिरापल्ली में धार्मिक और दार्शनिक वाद–विवादों का आयोजन किया।

(14) 1625 के बड़े दिन उसने सेन्दामंगलम के पदच्युत राजा तिरूमंगला, उसकी पत्नी, माँ और बच्चों को बपतिस्मा दिया।

(15) उसी वर्ष फादर इम्मानुएल मार्टिन उनके मिशन से जुडने आए। इस काल में ब्राम्हणों के मध्य कार्य कम परन्तु शूद्रों और आदि–द्रविडों के मध्य और भी अधिक बढ़ गया था। यह चकित करने वाला विकास था। यह एक आदि–द्रविड़ पन्डाराम (धार्मिक सन्यासी) के जीवन परिवर्तन के कारण हुआ जो लंगोट पहनता था और लगभग दो हजार लोगों का गुरू था जो शूद्रों और आदि–द्रविड़ों में से थे।

(16) जाति समस्या चिंताजनक हो गई। इस समस्या का हल निकालने के लिए मिशनरी ऊँची जाति के लोगों की सेवा दिन में और नीची जाति के लोगों की सेवा रात्रि में करने लगे। परन्तु यह असंतोषजनक था। तब यह निर्णय लिया गया कि नीची जाति के लोगों के मध्य कार्य करने के लिए विशेष लोग नियुक्त किए जाएं। वे पन्डारास्वामी कहलाए।

(17) चूंकि वे सन्यासियों की तरह रहते थे, ऊँची जातियों के लोगों के द्वारा भी उनका सम्मान किया जाता था। नीची जाति और आदि–द्रविडों के मध्य कार्य करना उनकी मुख्य जिम्मेदारी थी।

(18) पुर्तगाली फादर बाल्थासार ड कोस्टा प्रथम पन्डारास्वामी थे जो 1640 में मिशन से जुड़े थे। वह तिरूचिरापल्ली इलाके में घुम्मकड़ जीवन जीए और असंख्य आदि–द्रविडों और शूद्रों को कलीसिया में ले आए।

(19) पुर्तगालियों से शत्रुता के कारण स्थानीय अधिकारी विदेशी सन्यासियों के विरोधी हो गए। नोबिली भी कैद किए

गए और जेलखाने में डाल दिए गए। फादर मार्टिन 1640 में तिरूचिरापल्ली से निष्काषित कर दिए गए।

(20) तिरूचिरापल्ली में 1644 में सताव और बढ़ गया। इस समय तक नोबिली बूढ़े हो रहे थे और उनके आँखों की रोशनी लगभग समाप्त हो चली थी। उन्हें 1645 मे जेसुइट मिशन का सुपीरियर नियुक्त कर जाफना (श्रीलंका) भेज दिया गया था। दो वर्षों पश्चात् उसे मयलापुर भेजा गया जहां उन्होंने शहर के बाहर सन्यासी के रूप में एक झोपड़ी में सेवानिवृति के दो वर्ष बिताए और 79 वर्ष की आयु में 1656 में उनकी मृत्यु हो गई।

(21) अपने सेवाकाल के पचास वर्षों के दरम्यान उन्होंने तमिल में अनेक पुस्तकें लिखीं। ज्ञानोपदेशम् उनका प्रमुख कार्य था। संस्कृत के सौ श्लोकों में मसीही सिद्धात का सारांश लिखा गया था। उन्होंने तेलगु और तमिल में अनेक गीत लिखे।

(22) 17वीं शताब्दी के बाकी भाग में और 18वीं शताब्दी के अधिकांश भाग में उनके समायोजन विधि का पालन किया जाता रहा।

# पाठ 12

अध्याय 5 (क्रमशः)

2. राबर्ट डी नोबिली का जीवन और सेवा (क्रमशः)

(23) कुछ आलोचक कहते हैं कि नोबिली की मृत्यु के समय सिर्फ 200 बपतिस्मा पाए हुये सदस्य थे किन्तु उनके अनुचर हजारों की संख्या का दावा करते हैं। वार्षिक पत्र में हजारों हजार बपतिस्मों की रिपोर्टें की गई थीं। वे यह भी कहते हैं कि मदुरै मिशन में शुद्र और परीया जाति के विश्वासियों की बड़ी संख्या थी, परन्तु समाज के आकार का वास्तविक चित्र प्राप्त करना कठिन है। फादर ह्यूपर ने 1700 में (नोबिली की मृत्यु के लगभग 45 वर्षों पश्चात्) मदुरै मिशन के मसीहियों की कुल संख्या का अनुमान 80,000 के आस–पास बताया।

(24) मदुरै मिशन में कार्य करने वाले मिशनरियों की अधिकतम संख्या कम थी, एक बार में दस या बारह से अधिक कभी नहीं। आम तौर पर उन्होंने जोड़ियों में कार्य किया, एक व्यक्ति ऊँची जाति में तो दूसरा नीची जाति में कार्य करता था।

(25) मदुरै मिशन की महत्वपूर्ण असफलता यह थी कि उन्होंने पुरोहित वर्ग के लिए भारतीयों का चुनाव, प्रशिक्षण और नियुक्ति नहीं की। अधिकार यूरोपीय पुरोहितों के हाथों में रहा। यद्यपि नोबिली और विको ने एक ऐसे कॉलेज का सपना देखा था जहां ब्राह्मण मसीहियों का पुरोहित वर्ग के लिए प्रशिक्षित किया जा सके किन्तु यह कभी वास्तविकता में आकार नहीं ले सका। इस असफलता का परिणाम लम्बे समय तक रहा क्योंकि इस क्षेत्र की कलीसिया असल में अनेक वर्षों तक स्वदेशी नहीं बन पाई।

3. मुगल दरबार में जेसुइट मिशन

(1) कुछ जेसुइटों ने अभिजात–वर्ग और शासकों के परिवारों पर ध्यान दिया।

(2) अकबर जिसने 1556 से 1605 तक शासन किया बहुत बद्धिमान और धर्म में बहुत रूचि रखने वाला व्यक्ति था। 1575 में वह इस्लाम से उब गया जिसमें उसका लालन–पालन हुआ था। उसने गोवा में संत पॉल महाविद्यालय से जेसुइटों को अपने दरबार में उपस्थित होने के लिए बुलवाया। 1579 में उसके दरबार में तीन जेसुइट फादर आए। उसने इन जेसुइटों और इस्लाम के शिक्षकों के मध्य खुले वाद–विवाद का आयोजन किया और उनकी बातों को सुनने में रूचि ली। आरम्भ में जेसुइटों को आशा हुई कि मुगल मसीही हो जाएंगे। किन्तु अकबर ने पहले ही अपने संश्लेषित विश्वास दीन–ए–इलाही को स्थापित करने का निर्णय ले लिया था जो मुगल साम्राज्य के सब लोगों को एक साथ लाने के लिए तैयार किया गया था। तीन वर्षों पश्चात् जब फादर्स को समझ आया कि सम्राट का विश्वास परिवर्तन असंभव था तो वे गोवा लौट गए।

(3) अकबर अप्रसन्न हो गया जब फादर्स गोवा लौट गए। मुगल दरबार में 1590 में दूसरा और 1595 में तीसरा मिशन भेजा गया। जेरोम जेवियर तीसरे मिशन का प्रमुख था जो संत ऑसिस जेवियर का भतीजा था और अति दक्ष विवादी था। वह 1595 से 1601 तक महान मुगल के दरबार में निरंतर रहा। अकबर ने 1601 में अपनी प्रजा के लिए मसीही विश्वास के स्वीकार किए जाने को वैध कर दिया। कुछ कुलीन महिलाओं और बच्चों का बपतिस्मा किया गया।

(4) अकबर का उत्तराधिकारी जहांगीर मसीहीयत से बहुत परिचित था। उसने अपने तीन भतीजों को मसीही शिक्षा प्राप्त करने और बपतिस्मा लेने की अनुमति दी। राज परिवार की महिलाओं पर जेसुइटों का अच्छा खासा प्रभाव था।

(5) 1627 में जहांगीर की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी शाहजहां और औरंगजेब रूढ़िवादी मुसलमान थे।

(6) दरबार के यूरोपीय चिकित्सक की एक पुत्री, जुलियाना, को राजपरिवार की महिलाओं से मिलने–जुलने की काफी

स्वतन्त्रता थी और उसने सताव के समय मसीहियों को बहुत सुरक्षा प्रदान की। उसने भी कुछ लोगों को मसीही बनने के लिए प्रभावित किया।

# पाठ 13

## अध्याय 6 :

## ईसवी सन् 1706 से 1857 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन

## क. प्रोटेस्टेंट मिशनों का आगमन :

1. विश्वव्यापी संदर्भ :

ए. (14 वीं से 16 वीं शताब्दी तक) के क्रूसेडों पश्चात्, स्पेन और पुर्तगाल दोनों अनेक शताब्दियों तक बहुत मजबूत प्रमुख कैथोलिक देश थे और कैथोलिक मिशनरी अपने नाविकों और सैनिकों के साथ दुनिया के छोर तक गए।

बी. 16वीं और 17वीं शताब्दियों में जब कैथोलिक पुर्तगाल की शक्ति क्षीण हो रही थी तब प्रोटेस्टेंट इंग्लैण्ड की ताकत बढ़ रही थी। अन्य प्रोटेस्टेंट देश, जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, हॉलैण्ड और जर्मनी अपने आस पास के देशों के विकास के साथ अपनी संपत्ति और शक्ति में भी बढ़ रहे थे।

सी. इन प्रोटेस्टेंट देशों के विकसित होने आर्थिक और राजनैतिक शक्तियों के परिणामतः भारत में भी प्रोटेस्टेंट युग का आरम्भ हुआ। ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति ने उसकी आर्थिक स्थिति को मजबूत किया और विश्व के चहुंओर उसके व्यवसायिक ठिकानों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया जिनमें से अनेक उसके उपनिवेश बन गए। इससे आगे, 1776 की अमरीकी क्रांति और उसके बारह वर्षों पश्चात् की फ्रांसिसी क्रांति ने राष्ट्रवाद, प्रजातंत्र और धर्मनिरपेक्षता का वातावरण पैदा कर दिया।

2. धार्मिक स्थिति :

ए. 1517 में, कैथोलिक कलीसिया के मार्टिन लूथर नामक एक जर्मन प्रीस्ट ने अपनी ''95 थिसिसों'' का प्रदर्शन किया जो कैथालिक कलीसिया में चुपके से घुस आए हुये पापपूर्ण अभ्यासों और झूठे सिद्धान्तों की आलोचना थे। लूथर का यह कार्य प्रोटेस्टेंट सुधार या रिफॉर्मेशन का आरम्भ माना जाता है जिसमें अनेक मसीहियों ने कैथोलिक कलीसिया को त्याग दिया और उन समूहों से जुड़ गए जो कैथोलिकवाद की गलतियों का विरोध कर रहे थे।

बी. मार्टिन लूथर के अतिरिक्त अन्य प्रमुख सुधारवादियो ंमें स्वीटजरलैण्ड का ज्वींगली और फ्रांस का जॉन कॉल्विन भी है जिसे अपने विश्वास के कारण स्वदेश छोड़कर भागना पड़ा और उसने जेनेवा, स्वीटजरलैण्ड को अपने अधिकतर कार्यों ंका केन्द्र बनाया।

सी. 1517 में आरम्भ हुए सुधार या "रिफॉर्मेशन" के लगभग प्रथम 100 या कुछ अधिक वर्षों के दरम्यान, प्रोटेस्टेंट कलीसियाएं अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ती रहीं। वे कैथोलिक कलीसिया के हमले झेलती रहीं और अनेक संप्रदाय तथा डिनॉमिनेशन के आपसी लड़ाई–झगड़ों के कारण कमजोर हो गईं।

डी. इस समय जर्मनी में हुये छापाखाने के अविष्कार के कारण, उन मसीहियों के लिए बाइबल उपलब्ध होने की संभावना साकार हो रही थी जो स्वयं बाइबल पढ़ने और सही सिद्धान्तों को समझने की चाहत रखते थे। इस बात ने मसीहीयत की बलकारक वृद्धि को हर जगह अग्रसर किया।

ई. 1676 में जर्मनी में भक्ति अभियान का आरम्भ तब हुआ जब जेकब स्पेनर ने व्यक्तिगत उद्धार पाने, भक्तिपूर्ण जीवन जीने, बाइबल अध्ययन करने और सुसमाचारीय गवाही देने पर जोर देना आरम्भ किया। इस अभियान के ऑगस्ट फ्रैंकी ने हाले विश्वविद्यायल आरम्भ किया जिसमें अनेक इवेंजलिकल अगुवों को प्रशिक्षित किया

गया जो आगे चलकर अनेक मिशनों के संस्थापक बने।

एफ. 18वीं और 19वीं शताब्दियों के दरम्यान इंग्लैण्ड ने भी जागृतियों का अनुभव किया, जैसे वेसलियन जागृति। जागृतियों ने मिशनरी लगन को हवा दी। 1858 की अमरीका की प्रार्थना जागृति ने, और 1870 से 1899 तक डी. एल. मूडी की सेवकाई ने संयुक्त राज्य अमरीका में आत्मिक जागृति को लाया।

जी. यूरोप और अमरीका में आई इन जागृतियों ने अनेक मिशनरी संस्थाओं के लिए धन उपलब्ध कराया।

3. भारत की राजनैतिक स्थिति :

ए. 18वीं सदी में मुगल साम्राज्य बिखरने लगा और विभिन्न प्रांत अपनी स्वतंत्रता घोषित करने लगे जिसके परिणाम स्वरूप लगातार युद्ध होने लगे।

बी. 17वीं शताब्दी में, पुर्तगालियों के अलावा अन्य यूरोपियन व्यापारिक कंपनियां भारत आ चुकी थीं। पुद्दुचेरी में फ्रांसिसीयों के अतिरिक्त, जो रोमन कैथलिक थे, अन्य सब प्रोटेस्टेंट थें। अधिकार पाने के लिए कंपनियों के बीच संघर्ष होते थे और उन्होंने जमीनी विस्तार के लिए भारतीय शासकों के साथ संधियां कीं। परन्तु 1757 में प्लासी के युद्ध ने बिटिश शक्ति को स्थापित कर दिया और उसे अन्य देशों के ऊपर प्रभुत्व दे दिया। भरत में ब्रिटिश शासन के समय में बहुत शांति और एकता प्राप्त की गई।

# पाठ 14

अध्याय 6 (क्रमशः)

ईसवी सन् 1706 से 1857 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन (क्रमशः)

ख. ट्रैंकोबार मिशन

(यह भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन का आरम्भ माना गया) :

1. डैनिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने उपनिवेशों में चैपलेन भेजे किन्तु उन्हें भारतीयों तक सुसमाचार पहुंचाने की अनुमति नहीं थी। डेनमार्क का राजा फ्रेडरिक चतुर्थ भारत में मिशनरी भेजने के लिए आतुर था। वे डेनमार्क में सही उम्मीदवार न पा सके अतः उन्होंने जर्मनी के "हाले" विश्वविद्यालय से अपील किया। दो नवयुवक, बार्थोलोम्यूस ज़िगनबाग और हेनरिक प्लुत्सचू चुने गए, अभिषिक्त किए गए और राजकीय मिशनरी के रूप में भारत भेजे गए। वे 9 जुलाई 1706 को भारत पहुंचे।

2. डैनिश लोगों के द्वारा इन दो मिशनरियों का ट्रैंकोबार में स्वागत नहीं किया गया और उन्हें तीन दिनों तक समुद्र तट से दूर इंतजार करना पड़ा। किले पर नियुक्त कमांडेंट हैसियस ने उन्हें एक और दिन इंतजार करवाया और बाद में सड़क के मध्य में छोड़ दिया। एक कनिष्ठ अधिकारी को उन पर तरस आया और उसने घर खोजने में उनकी मदद की।

3. मिशनरियों ने शीघ्रता से व्यवसायिक भाषा (पुर्तगाली) और लोगों की भाषा (तमिल) को सीख लिया। उन्होंने जर्मन सैनिकों के लिए आराधना और घरेलु नौकरों के लिए पुर्तगाली भाषा में धार्मिक शिक्षा देना आरम्भ किया। ज़िगनबाग ने तमिल भाषा में हिन्दुओं के साथ धार्मिक वार्तालाप आरम्भ किया और 1707 तक नौ तमिलों का बपतिस्मा हो गया। 1719 आते तक बपतिस्मा पाने वालों की संख्या बढ़कर 428 हो गई थी। उन्होंने तमिल और पुर्तगाली स्कूल भी स्थापित किए।

4. ज़िगनबाग को भाषाएं सीखने का वरदान था। वह अतिशीघ्र तमिल लिखना सीख गया। उसने मार्टिन लूथर की धर्मशिक्षा प्रश्नोत्तरी (कैटिकिस़म) का अनुवाद किया और सुसमाचार संदेश के ट्रैक्टस और स्कूल की पुस्तकों का तमिल में अनुवाद किया। दो वर्षों के भीतर ही उसने बाइबल का अनुवाद करना आरम्भ कर दिया और अपनी मृत्यु के समय तक नया नियम और पुराना नियम में रूथ तक पूरा कर लिया था। उसने तमिल–जर्मन शब्दकोष का संग्रह किया।

5. 1709 में तीन और मिशनरी पहुंचे। सब मिशनरियों और तीन स्कूलों के लिए एक बड़ा परिसर खरीदा गया था। मिशन कार्य पोरियार तक बढ़ाया गया। दानिश राजा ने 1712 में सहयोग के लिए एक स्थायी प्रबंध किया और 1714 में एक मिशन बोर्ड का गठन किया गया।

6. प्रार्थना करना, प्रचार करना, स्कूलों की स्थापना करना और भारतीय धर्मशिक्षा प्रश्नोत्तरी, प्रतिवेदनों और दिशा–निर्देश देने के लिए सप्ताह में एक दिन की सभा करना यह उनकी आम स्वीकृत विधि थी।

7. ज़िगनबाग अन्य स्थानों पर कार्य का विस्तार करना चाहता था। कड्डालोर, थंजावुर, त्रिची, मद्रास (चेन्नई), नागापट्टनम इत्यादि में मिशन कार्य स्थापित किए गए। जब थंजावुर में कार्य आरम्भ हुआ तो अनेक कैथोलिक मसीही प्रोटेस्टेंट बन गए। हिन्दू नवविश्वासियों में से एक लगनशील सुसमाचार प्रचारक था जो पोराइयार के आस पास के क्षेत्र में घूम घूम कर प्रचार किया करता था। 1733 में वह अभिषेक किया गया प्रथम भारतीय पासबान बना।

8. उनका कार्य मुख्यतः पांच सिद्धान्तों पर आधारित था :

ए. शिक्षा और कलीसिया को एक साथ चलना चाहिए। यह अधिकांश आधुनिक मिशनरी कार्य के लिए मूलसिद्धान्त था।

बी. साहित्य : धर्मशास्त्र को स्थानीय भाषा में उपलब्ध कराया जाना चाहिए और सुसमाचार प्रचार के बाद साहित्य के वितरण से उसे पोषित किया जाना चाहिए। मिशन ने भारतीय भाषा में धर्मशास्त्र और अन्य साहित्य का प्रकाशन आरम्भ किया और स्थानीय भाषा के उपयोग पर जोर दिया।

सी. परम्पराएं और संस्कृति : सुसमाचार प्रचार लोगों की आदतों, रीति–रिवाजों और विश्वासों का अध्ययन करने के पश्चात ही किया जाना चाहिए।

डी. व्यक्तिगत उद्धार पर जोर दिया गया और कलीसिया में प्रवेश के लिए उसे सख्ती के साथ आवश्यक माना गया।

ई. भारतीय कलीसिया की स्थापना जितनी शीघ्र संभव हो भारतीय नेतृत्व के अधीन की जानी चाहिए।

9. ट्रैंकोबार मिशन का सारांश (बहुधा उसे दानिश रॉयल मिशन कहा गया) :

ए. उन्होंने मिशनरी कार्य और एक्यूमेनिकल सहयोग का प्रभावशाली नमूना प्रस्तुत किया।

बी. भारत का प्रथम प्रोटेस्टेंट स्कूल उन्हीं के द्वारा आरम्भ किया गया।

सी. ट्रैंकोबार मिशन ने कलीसिया में जाति व्यवस्था को बनाए रखा और कलीसिया में विभिन्न जाति समूहों को अलग अलग स्थान आबंटित किए गए थे।

डी. विरोध और कठिनाइयों के मध्य उन्होंने भारत में प्रोटेस्टेंट मसीहीयत की नेंव रखी।

ई. ट्रैंकोबार मिशन रिपोर्ट के सारांश के आधार पर फ्रैंकी ("हाले" विश्वविद्यालय का अगुवा) के द्वारा प्रथम प्रोटेस्टेंट मिशनरी मैगजीन का प्रकाशन किया गया था। मिशनरी कार्य के लिए इसका यूरोप और अमरीका पर दूरगामी प्रभाव पड़ा।

# पाठ 15

अध्याय 6 (क्रमशः)

ईसवी सन् 1706 से 1857 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन (क्रमशः)

ग. शुल्ज़ और श्वार्ट्ज नामक दो मिशनरीः

1. शुल्ज़ ट्रैंकोबार में जिगनबाग का प्रारंभिक उत्तराधिकारी था। वह लैटिन, इब्रानी और यूनानी का विद्वान था। भारत आने के पश्चात् उसने तमिल, तेलगु, हिन्दुस्तानी और संस्कृत में महारत हासिल कर ली। उसने 1726 में ट्रैंकोबार छोड़कर मद्रास में मिशन कार्य आरम्भ करने का निर्णय किया। एस.पी.सी.के. (सोसायटी फॉर द प्रमोशन ऑफ क्रिश्चयन नॉलेज) ने मद्रास में उसके कार्य का जिम्मा लेने और सहयोग करने का निर्णय लिया क्योंकि वह शहर ब्रिटिशों का था। इसे इंग्लिश मिशन के रूप में माना गया। शुल्ज ने तमिल, तेलगू और हिन्दुस्तानियों के लिए स्कूल आरम्भ किए। वह तमिलों और तेलगुओं को कलीसिया में लेकर आया और वेपरी में एक मसीही समाज की स्थापना किया। अपनी सेवानिवृति के पश्चात् वह जर्मनी चला गया और वहां उसकी मुलाकात श्वार्ट्ज नाम के एक युवक से हुई जो तमिल देश में मिशनरी कार्य करने की रूचि रखता था।

2. श्वार्ट्ज उन महान मिशनरियों में से एक था जो भारत आए।

   ए. उसका जन्म 1726 में जर्मनी में एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ। उसकी मां ईश्वर भक्त थी। जब श्वार्ट्ज छोटा ही था तब उसके मां की मृत्यु हो गई और उसकी मां ने अपनी मृत्यु पूर्व अपने पति से यह वचन ले लिया था कि यदि उनका पुत्र कभी मिशनरी बनकर जाना चाहे तो वे उसके पुत्र के मार्ग में नहीं आएंगे।

   बी. श्वार्ट्ज ने शुल्ज से संस्कृत सीखा और अपने पिता से अनुमति प्राप्त करके तमिलनाडु में मिशनरी बनने का निर्णय लिया। उसने फ्रैंकी जूनियर के अधीन "हाले" विश्वविद्यालय में थियालॉजिकल शिक्षा प्राप्त की। वह 1750 में भारत आया और बिना एक भी बार स्वदेश गए लगातार 48 वर्षों तक मिशनरी सेवा प्रदान की।

   सी. श्वार्ट्ज की मिशनरी सेवा को तीन भागों में बांटा जा सकता है :

      (1) श्वार्ट्ज ट्रैंकोबार के अनेक मिशनरियों में से एक था। इस काल में उसने तमिल भाषा सीखी और मिशनरी स्कूलों का निरीक्षण किया। उसने अपने पहले वर्ष का पूरा वेतन मिशन भवन बनाने में लगा दिया और उसके पश्चात् आधा वेतन मिशन कार्य में लगा दिया और सिर्फ आधा वेतन अपने पर खर्च किया। उसने परोपकार में बहुत दिया। वह बारंबार मिशनरी यात्राओं में उत्तर में मद्रास और पश्चिम में त्रिची जाता रहा।

      (2) इस समय तक त्रिची आरकोट के नवाब के राज्य के अधीन आ चुका था। ब्रिटिश और नवाब के मध्य मित्रता थी। ब्रिटिशों ने त्रिची में नगर की रक्षा के लिए, और कर संग्रह में नवाब की सहायता के लिए, एक सेना रखी। ब्रिटिश और नवाब के द्वारा एक प्रकार से दोहरी सरकार थी। प्रातों में, ब्रिटिश सेनाओं और नवाब की सेना के मध्य अक्सर संघर्ष होता रहता था। एक बार नवाब और मदुरै के गर्वनर के मध्य युद्ध हो गया। श्वार्ट्ज घायल अंग्रेज और भारतीय सैनिकों को पासबानी सेवा प्रदान कर रहे थे। अतः नवाब और अंग्रेज सेनापति दोनों ही श्वार्ट्ज के कार्य से प्रसन्न थे। सेनापति ने उनसे त्रिची को अपना मुख्यालय बनाने का आग्रह किया। तद्अनुरूप श्वार्ट्ज ट्रैंकोबार से त्रिची चले गए।

   डी. दूसरा काल–खण्ड त्रिची में स्थित इंग्लिश मिशन के साथ था (1762 –1778)

      (1) त्रिची मुख्यालय में रहते हुए श्वार्ट्ज का स्वागत इंग्लिश मिशन (एस.पी.सी.के. के सहयोग से) के द्वारा उनके मिशनरी के रूप में किया गया ताकि वे सेना की पासबानी आवश्यकताओं को पूरा करें और मिशनरी कार्य भी कर सकें। श्वार्ट्ज ने त्रिची के किले में भारतीय मसीही मण्डली स्थापित की और

एक बहुत सुन्दर चर्च भवन भी बनाया। अचानक एक दिन किले में रखा बारूद दुर्घटनावश फट गया और उससे अनेक सैनिक और असैनिक मारे गए। श्वार्ट्ज ने उस दुर्घटना में मारे गए लोगों के बच्चों के लिए एक अनाथालय आरम्भ किया। सरकार ने उस अनाथालय की सहायता में कुछ आर्थिक मदद की। उस समय से श्वार्ट्ज सरकार का एक विश्वस्त मित्र बन गया। पूरे दक्षिण भारत में उसका नाम प्रसिद्ध हो गया।

(2) एक अवसर पर अंग्रेजों ने मैसूर के सुल्तान हैदर अली के साथ शांति–संधि की। परन्तु हैदर अली ने पूरे तमिलनाडु को जीतने की तैयारी की। उसने श्वार्ट्ज को छोड़, जिसे वह "मसीही" कहता था, किसी भी अन्य व्यक्ति को मध्यस्थता के लिए अस्वीकार कर दिया। हैदर अली के अनुसार पूरे दक्षिण भारत में सिर्फ श्वार्ट्ज ही एकमात्र यूरोपीय व्यक्ति था जो सच्चा मसीही था। श्वार्ट्ज गया और हैदर अली ने उसे अच्छे से ग्रहण किया और उसका आदर दिया और उसे अपने राज्य में सुसमाचार प्रचार करने की अनुमति दी। श्वार्ट्ज शांति–संधि करवाने में सफल रहा और उसने पूरे भू–भाग पर बड़ी विपत्ति आने से बचा लिया। (परन्तु इस संधि को तोड़नेवाला एक अंग्रेज था जो चतुर्थ मैसूर युद्ध के लिए जिम्मेदार था।)

# पाठ 16

अध्याय 6 (क्रमशः)

ईसवी सन् 1706 से 1857 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन (क्रमशः)

सी. शुल्ज़ और श्वार्ट्ज नामक दो मिशनरी (क्रमशः)

(3) मैसूर से त्रिची वापस आने पर श्वार्ट्ज ने आधुनिक उत्तर कोयंबटूर और दक्षिण पश्चिम सालेम जिलों में, जो उन दिनों मैसूर राज्य का भाग थे, सुसमाचार प्रचार किया। त्रिची में अपनी सेवा के दरम्यान श्वार्ट्ज ने बड़ी संख्या में युवाओं को सुसमाचार प्रचारकों और धर्मशिक्षा प्रश्नोत्तरी की शिक्षा देने वालों के कार्य के लिए प्रशिक्षित किया। इसके परिणाम–स्वरूप गांवों में अनेक मसीही मण्डलियां स्थापित की गई जिनमें से कुछ बहुत मजबूत थीं।

(4) त्रिची में व्यापार बढ़ रहा था और श्वार्ट्ज ने पाया कि वह स्थान व्यापारियों, क्रेताओं और विक्रेताओं, सब को सुसमाचार सुनाने का अच्छा केन्द्र था क्योंकि सब वहां एकत्र होते थे। इस प्रकार त्रिची से दूर के व्यापारियों के द्वारा उनके ग्रामीण क्षेत्रों में मसीहीयत का परिचय दिया गया जिसमें रामनाड, शिवगंगा और तिरूनलवेली हैं।

(5) श्वार्ट्ज तिरूनलवेली गया और 3 मार्च 1778 को क्लोरिन्डा नामक एक ब्राह्मण महिला को बपतिस्मा दिया। उसने पलायमकोट्टई में भारतीय मसीहियों की पहली मण्डली स्थापित की। सर्वोच्च ब्राह्मण जाति से लेकर सबसे नीची जाति पुराठा वन्नार की 18 जातियों से कुल 40 सदस्य बने। उसने एक चर्च भवन भी बनाया जो आज तक विद्यमान है और मसीही और अमसीही बच्चों की शिक्षा के लिए एक शाला भी आरम्भ की। आज वह कलीसिया साढ़े तीन लाख सदस्यों वाली तिरूनलवेली डायोसिस बन चुकी है।

(6) श्वार्ट्ज ने रामनाड, शिवगंगा, त्रिची, तंजोर (राजमहल क्षेत्र) और डिंडीक्कल में मण्डलियों और शालाओं की स्थापना की। उन्होंने जो शालाएं रामनाड, तंजोर और त्रिची में स्थापित की वे आज भी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के रूप में चल रहे हैं और त्रिची में महाविद्यालय भी है।

(7) जब श्वार्ट्ज त्रिची में था तब वह तंजोर के राजा, तुलसी राजा, को कभी कभी मिलने जाया करता था। राजा को उनके साथ आनन्द आता था और वे उसका आदर करते थे और उसे तंजोर में ही बसने का निमंत्रण भी दिए। तद्अनुसार श्वार्ट्ज 1779 में वहां चला गया।

ई. तीसरा काल–खण्ड, तंजोर पर आधारित (1779–1798) :

(1) श्वार्ट्ज एक राजनेता था और उसने सरकार के लिए, जो अधिकतर ब्राह्मणों और धनी जमींदारों के नियंत्रण मे थी, बहुत बड़े कार्य किये। जब किसान राजा की सेना के द्वारा निर्दयतापूर्वक प्रताड़ित किए जा रहे थे तब उन्होंने कृषि कार्य करने से मना कर दिया। श्वार्ट्ज ने राजा और जमींदारों को किसानों के साथ सम्मानजनक व्यवहार करने के लिए बाध्य करने के द्वारा मध्यस्थता की। इस प्रकार उसने राज्य को विनाश से बचा लिया।

(2) मिस्र में यूसुफ की तरह श्वार्ट्ज ने, चौथे मैसूर युद्ध के फलस्वरूप आने वाले अकाल को देख लिया और लोगों को आगे के बुरे दिनों के लिए मक्का बचाने की सलाह दी। इस तरह उसने स्वयं को एक

अच्छा राजनेता सिद्ध किया।

(3) इस पूरे समय वह यह नहीं भूला कि वह एक मिशनरी था। वह अपना मिशनरी कार्य पूरी लगन से करता रहा। एक अवसर पर नवाब ने तंजोर राज्य पर विजय पा लिया, तुलसी राजा को जीवित पकड़ लिया और उसे कैदखाने में डाल दिया। तब श्वार्ट्ज ने नवाब को मजबूर किया कि वह तंजोर छोड़ दे और तुलसी राजा को राज्य वापस कर दे। इसी बीच बात यह थी कि तंजोर के राजा के कोई पुत्र या पुत्री नहीं थे, अतः उसने अपने एक रिश्तेदार के दस वर्षीय बालक को गोद लिया जिसका नाम सिरोफोजी था। जब 1787 में राजा की मृत्यु हुई, उसने श्वार्ट्ज को राज्य–संरक्षक बनने का आग्रह किया। श्वार्ट्ज ने इनकार कर दिया किन्तु राजा को सलाह दी कि अपने भाई अमीर सिंग को राज्य–संरक्षक नियुक्त करे। ऐसा किया गया। परन्तु अमीर सिंग ने स्वयं को राजा घोषित कर दिया और सिरोफोजी को मार डालना चाहा। अतः श्वार्ट्ज ने सिरोफोजी को गेरिक नामक एक साथी मिशनरी से शिक्षा प्राप्त करने के लिए मद्रास भेज दिया। श्वार्ट्ज ने अंग्रेजों से सिरोफोजी को उसका सिंहासन वापस दिलाने का निवेदन किया। ब्रिटिश सरकार ने श्वार्ट्ज को तब तक के लिए राज्य का प्रमुख प्रशासक नियुक्त किया जब तक कि सिरोफोजी राज्य करने योग्य न हो जाए। श्वार्ट्ज ने कुछ समय तक राज्य संभाला तत्पश्चात् उसका कार्य करने के लिए एक समिति का गठन कर दिया। सिरोफोजी आगे चलकर गद्दी पर विराजमान हुआ।

(4) 1784 में क्लोरिण्डा तंजोर आई और श्वार्ट्ज से निवेदन किया कि कलीसिया की सेवा के लिए किसी को नियुक्त करे। उसने 1785 में पलायमकोट्टई का दूसरा दौरा किया और कैटेकिस्ट सत्यानन्दन को प्रभारी नियुक्त किया। सत्यान्दन का 1790 में लूथरन व्यवस्थानुसार ट्रैंकोबार में पादरी कार्य के लिए अभिषेक किया गया और वे तिरूनलवेली की बढ़ती हुई कलीसिया को संभालने लगे। सत्यानन्दन एक नम्र और समर्पित व्यक्ति थे। उनके प्रति श्वार्ट्ज के विचार उच्च थे।

(5) 13 फरवरी 1798 को तंजोर में श्वार्ट्ज की मृत्यु हुई। 1820 आते तक ट्रैंकोबार को छोड़कर ट्रंकोबार के सब मिशन स्टेशन तंजोर के इंग्लिश मिशन को सौंप दिए गए।

# पाठ 17

अध्याय 6 (क्रमशः)

ईसवी सन् 1706 से 1857 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन (क्रमशः)

घ. इंग्लिश इवेंजलिकल चैपलेन्स

1. 18वीं शताब्दी और 19वीं सदी के आरंभिक समय के दरम्यान इंग्लैण्ड में मसीहीयत ने जागृति का अनुभव किया। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय जागृति का केन्द्र था। जागृति लाने वाले प्रसिद्ध चार्ल्स सिमियन ने विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के मनों को मिशनरी कार्य के लिए प्रभावित किया। उन दिनों मे एंग्लीकन चर्च एस.पी.जी. नामक मात्र एक मिशन को सहयोग देता था। अतः कुछ स्नातक जो मिशनरी कार्य का दर्शन पाए, ईस्ट इंडिया कम्पनी में चैपलेन का कार्य करने के लिए भारत आए। इन चैपलेनों में से प्रथम पांच भारत में मसीही मिशन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे। वे थे डेविड ब्राऊन (1787 में आए), क्लॉडियस बुंकानन (1798 में आए), डैनिएल कॉरी, हेनरी मार्टिन और कॉमेथ थॉमसन।

2. ब्राऊन और बुकानन ने कलकत्ता के "बेथ–टेफीलाह" कलीसिया में सेवा दी। वे उस फोर्ट विलियम कॉलेज के प्रधानाचार्य और उप–प्रधानाचार्य भी रहे जिसमें ब्रिटिश युवक और भारतीय सिविल सेवा के अधिकारी प्रशिक्षित किए जाते थे। इस महाविद्यालय के स्नातक सच्चे मसीही बने और कानून–व्यवस्था और प्रशासन में बराबरी की परम्परा स्थापित किए। इनमें से कुछ कमिश्नर और गवर्नर भी बने और अपने अपने क्षेत्रों में मिशन सेवा का परिचय देने के लिए जिम्मेदार भी रहे।

3. डैनिएल कॉरी को अयारा, बनारस और अनेक स्थानों में कलीसिया की स्थापना के लिए जाना जाता है। वे मद्रास के प्रथम बिशप थे।

4. हेनरी मार्टिन सबसे अधिक बुद्धिमान और सर्वाधिक रोगी भी थे; वे तपेदिक के रोगी थे। वे महानतम् सुसमाचार प्रचारक और नया नियम का फारसी भाषा में अनुवाद करने वाले व्यक्ति थे। वे कलकत्ता में बाइबल सोसाइटी की ऑक्जीलरी के संस्थापक भी थे। मार्टिन की मृत्यु 1812 में फारस के रास्ते इंग्लैण्ड जाते हुए फारस में हुई।

5. कॉमेथ थॉमसन अतिअनुशासित व्यक्ति थे जिन्होंने ऊच्च धार्मिक जीवन स्तर बनाए रखा। उन्होंने कलकत्ता के ब्रिटिश निवासियों के मध्य सुसमाचारीय मसीहीयत स्थापित की।

6. ये चैपलेन्स यद्यपि एंग्लिकन चर्च से आते थे, तौभी उन्होंने सिरामपुर के ब्रिटिश मिशनरियों के साथ बहुत मधुर व्यवहारिक सम्बंध बनाए रखे।

च. सिरामपुर मिशन

1. ईस्ट इंडिया कम्पनी ने मिशनरियों के प्रवेश का विरोध किया। तर्क यह दिया गया कि भारतीयों के विश्वासों के साथ दखलंदाजी का प्रयास ब्रिटिश शासन को खतरे में डालेगा। सिर्फ कंपनी के चैपलेनों को प्रवेश की अनुमति थी। 1793 में विल्बरफोर्स नामक इवेंजलिकल रिफार्मर के द्वारा कंपनी के ऊपर मिशनरी भेजने के लिए दबाव डालने का प्रयास किया गया। इस मुद्दे पर संसद में बहस की गई और उसे अस्वीकार कर दिया गया।

2. डॉ. विलियम कैरी भारत आने वाले मिशनरियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध मिशनरी थे। वे अपने मार्ग प्रशस्त करने वाली अपनी जीवन शैली और सेवा के कारण "आधुनिक मसीही मिशन के पिता" कहे जाते हैं। उनके मिशनरी योजना और विचार क्रांतिकारी थे और उनकी लगन अनुकरणीय थी।

3. विलियम कैरी (1761–1834) का जन्म इंग्लैण्ड के एक गांव में एक निर्धन परिवार में हुआ था। 14 वर्ष की आयु

में उन्होंने जूतियां सुधारने का कार्य सीखना आरम्भ किया। 18 वर्ष की आयु में उनका बपतिस्मा हुआ। वह मोची का कार्य करते थे और साथ ही कलीसिया में अनाभिषिक्त प्रचारक की सेवा भी देते थे। उन्होंने कैप्टन कुक के द्वारा लिखी गई पुस्तक "वोयेजेस अराउण्ड द वर्ल्ड" पढ़ी। उसने उन्हें यह सोचने पर मजबूर किया कि कलीसिया को अमसीही विश्व में सुसमाचार प्रचार का कार्य करना चाहिए। उनकी मोची की दुकान के सामने विश्व का एक बड़ा मानचित्र टंगा रहता था जिसमें संख्याएं और सूचनाएं दर्ज थीं। कार्य करने के साथ वह प्रत्येक देश के लिए प्रार्थना भी करते थे। अपने व्यक्तिगत बाइबल अध्ययन में वे बपतिस्मा इत्यादि के विषय कुछ सिद्धान्तों के कायल हो गए और डूब का बपतिस्मा ले लिए। वह बैपटिस्ट कलीसियाओं में वचन प्रचार करने लगे और अंततः उनका अभिषेक कर दिया गया।

4. नॉटिंघम की एक सभा में कैरी ने प्रस्ताव रखा, "अमसीही देशों में सुसमाचार फैलाने का प्रयास करना मसीहियों का कार्य है। परन्तु अध्यक्ष ने कैरी से बैठ जाने को कहा। इसके शीघ्र पश्चात् कैरी ने एक पुस्तक लिखी, "अमसीहियों के जीवन परिवर्तन के लिए उपाय करने हेतु मसीहियों के जिम्मेदारी की खोज," जो आज भी मिशनरी पुस्तकों के मध्य ऊँचा स्थान रखती है।

5. 31 मई 1792 के दिन, विलियम कैरी ने बैपटिस्ट उपदेशकों के मध्य यशायाह 54:2–3 पर अपना दो प्वाइन्ट वाला सर्वाधिक प्रसिद्ध उपदेश "परमेश्वर के लिए महान प्रयास करें; परमेश्वर से महान चीजों की आशा करें," का प्रचार किया। उपदेश ने बारह उपदेशकों के हृदयों को झकझोर दिया और उन्होंने बैपटिस्ट मिशनरी सोसाइटी का गठन किया। कैरी ने स्वयं को प्रथम मिशनरी के रूप में समर्पित किया।

# पाठ 18

अध्याय 6 (क्रमशः)

ईसवी सन् 1706 से 1857 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन (क्रमशः)

च. सिरामपुर मिशन (क्रमशः)

6. बैपटिस्ट मिशनरी सोसाइटी के गठन के चार महीनों के पश्चात् विलियम कैरी और डॉ. जॉन थॉमस बाहर भेजे जाने वाले प्रथम दो मिशनरी थे। कैरी अपने सहयोगियों के साथ सपरिवार कठिन समुद्री यात्रा के पश्चात् नवम्बर 1793 को कलकत्ता पहुंचे।

7. कैरी की मिशनरी सेवा आरम्भ में भारत में अति सरल नहीं थी। वे एक वर्ष के लिए अपनी आर्थिक सहायता लेकर आए थे। थॉमस के कमजोर आर्थिक प्रबंध के कारण उनका धन दो ही माह में खर्च हो गया। कैरी की पत्नी और जेठा पुत्र पेचिश के कारण अतिगंभीर बीमार हो गए। वे शासन करने वाले अंग्रेजों के द्वारा हतोत्साहित और वापस भेज दिए जाने के नाम से भयभीत किए गए।

8. थॉमस ने उत्तर बंगाल में रहने वाले अपने एक ब्रिटिश मित्र, उदनी, से अपने सम्बंध को नया बनाया। उदनी कलकत्ता से दूर ऐसे स्थानों की नील की फैक्टरियों में थॉमस और कैरी के लिए प्रबंधक के पद खोजने में सफल रहे जहां वे ब्रिटिश शासन के हतोत्साह से बचे रहेंगे। उसने उनके लिए एक छापाखाना का प्रबंध भी किया।

9. मिशनरी माल्दा जिले के मदनाबाती चले गए। पहले ही महीने में रोग ने परिवार में फिर अपना रूप दिखाया। बच्चों में से एक की मृत्यु हो गई और श्रीमती कैरी अनजाने देश में इन सब विपत्तियों के आघात से मानसिक रूप से बीमार हो गईं। वे मदनाबाती में साढ़े पाच वर्ष रहे।

10. 1799 में इंग्लैण्ड से चार और परिवार आ पहुंचे। ब्रिटिशों से उन्हें मदनाबारी जाने की अनुमति नहीं मिली अतः कैरी और थॉमस 1900 के आरम्भ में सिरामपुर आ गए। विलियम कैरी, मार्शमैन और वार्ड ये तीनों मिलकर ''सिरामपुर ट्रिओ'' या ''सिरामपुर के तिकड़ी" कहलाए।

11. चूंकि यह मान्य सिद्धान्त था कि मिशन को अपने खर्च की आपूर्ति की व्यवस्था स्वयं करना होगा, मार्शमैन और उनकी पत्नी ने एंग्लो–इंडियन लड़के लड़कियों के लिए स्कूल आरम्भ किया जिसमें वे शुल्क लेने लगे। छापाखाना भी बाहर से कार्य लेने के द्वारा धन अर्जित करने लगा।

12. मदनाबाती में पांच वर्ष के सुसमाचार प्रचार कार्य से कोई फल नहीं मिला। परन्तु सिरामपुर में सेवा के पहले ही वर्ष (1800 में) में कृष्णन पाल नामक एक बढ़ई ने बपतिस्मा लिया। शीघ्र ही उसकी पत्नी, साली और एक अन्य पड़ोसी के परिवार ने भी बपतिस्मा लिया। उनमें जाति विभाजन नहीं था।

13. 1810 के आरंभिक दिनों मे ही बंगाली नया नियम का प्रकाशन किया गया। उसके प्रकाशन ने अनापेक्षित परिणाम दिया। कैरी को उस फोर्ट विलियम कॉलेज में बंगाली के प्रोफेसर बनने का आमंत्रण मिला जिसे लॉर्ड वेलेस्ली, गर्वनर जनरल, ने उसी वर्ष ईस्ट इंडिया कंपनी के कनिष्ठ अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए स्थापित किया था। उस पद ने बड़ी तनख्वाह दी जो तब और भी बढ़ गयी जब कैरी बंगाली के साथ संस्कृत और मराठी के भी प्रोफेसर बन गये। उन्होंने सब आमदनी एक आम खजाने में रखी। इस तरह से न ही सिर्फ वे आत्म निर्भर बने किन्तु मिशन के लिए एक बड़ी रकम जुटाने में भी सफल रहे। सिरामपुर और आस पास के गांवों में कुछ कलीसियाएं भी स्थापित की गईं।

14. व्यक्तिगत रीति से कैरी एक प्रकृतिवादी थे। वे पत्थरों, फूलों और पत्तियों के नमूने संग्रह किया करते थे। वे बागवानी विशषज्ञ भी थे। उन्होंने कलकत्ता बागवानी सोसायटी की स्थापना की। उन्होंने एक उद्यान लगाया जिसमें दुर्लभ फूल–पौधों के नमूने रोपे गये।

15. 1803 मे सीरामपुर तिकड़ी ने भारत और उसके बाहर के देशों के विभिन्न भागों में मिशनरी भेजने की योजना बनाई। उन्होंने प्रत्येक मिशनरी से किसी व्यवसाय में कार्य करके आत्मनिर्भर बनने की और वहां से बचे समय में सुसमाचार प्रचार करने, साहित्य वितरण करने और स्कूल चलाने की आशा की। उनका कार्य दिनाजपुर, मालदा और कटवा तक फैल गया। 1805 में छः भारतीय मसीही मिशनरी थे। 1834 आते तक 18 मिशनरी हो गए। ''सिरामपुर ट्रिओ'' के तीनों मिलकर मिशन के सब कार्यों का संचालन करते और साथ में बहुत धनोपार्जन भी करते थे।

16. सिरामपुर मिशन ने 126 प्राथमिक शालाएं स्थापित की। 1818 में उन्होंने सिरामपुर कॉलेज की स्थापना की।

17. 1834 में जब कैरी की मृत्यु हुई, तब तक छः भाषाओं में पूरी बाइबल, 23 भाषाओं मे नया नियम और दस छोटे खण्ड छापे जा चुके थे। कुछ अनुवाद त्रुटिपूर्ण थे। भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त बर्मा, जावा, मलय, और चीनी भाषाओं मे भी कार्य किया गया था। कैरी ने स्वयं के लिए "बंगाली गद्य का पितामह" का सम्मान जीत लिया था।

18. सीरामपुर ट्रिओ मिशन के कार्यों के संचालन के लिए स्वतन्त्र थे। इस बात ने इंग्लैण्ड में बैपटिस्ट मिशनरी सोसाईटी के साथ संघर्ष उत्पन्न करा दिया। 1816 में नए मिशनरियों ने स्वयं को ट्रिओ से अलग कर लिया। मार्शमैन 1827 मे इंग्लैण्ड गए और खाई को पाटने का प्रयास किया, परन्तु वह असफल रहा। इसके पश्चात् सीरामपुर मिशन स्वतंत्र हो गया।

# पाठ 19

अध्याय 6 (क्रमशः)

ईसवी सन् 1706 से 1857 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन (क्रमशः)

च. सिरामपुर मिशन (क्रमशः)

19. मार्शमैन ने बंगाली भाषा में साप्ताहिक समाचार पत्र निकाला, जो अपने आप में पूर्वी भाषा में छपने वाला पहला समाचार पत्र था। उसने अंग्रेजी में भी "द फ्रेन्ड ऑफ इंडिया" नामक मासिक पत्रिका निकाली। दोनों ही समाचार पत्रों ने सामाजिक सुधार के विषय में लोगों को शिक्षित किया। कैरी के आग्रह करने पर लॉर्ड विलियम बैन्टिक ने 1829 में "सती प्रथा," गंगा नदी में बच्चों को फेंक कर बलि चढ़ाना और बाल विवाह जैसी सामाजिक बुराईयों को वृहद रूप में अवैध घोषित किया।

20. 1823 में हैजा के कारण वार्ड की मृत्यु हो गई; कैरी की मृत्यु 1834 में और मार्शमैन की मृत्यु 1837 में हो गई। ये तीन व्यक्ति भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन के पायोनियर मिशनरियों के रूप में अपना विशेष स्थान रखते हैं।

21. सिरामपुर मिशन अपने मिशनरी कार्य में पांच सिद्धान्तों का उपयोग करता रहा :

ए. सुसमाचार का प्रचार सब संभावित तरीकों से किया जाना चाहिए।

बी. सुसमाचार के प्रचार को लोगों की भाषा में बाइबल के वितरण के द्वारा पुष्ट किया जाना चाहिए। इसलिए बाइबल के अनुवाद और प्रकाशन पर जोर दिया गया।

सी. नवविश्वासी जितना शीघ्र एकत्र हों, बैपटिस्ट कलीसिया का गठन होना चाहिए (उनकी संगति इंग्लैण्ड में सिर्फ बैपटिस्ट कलीसिया से थी)।

डी. अमसीहियों की संस्कृति और विचार शैली के अध्ययन पर जोर दिया गया था। कैरी ने संस्कृत व्याकरण लिखा और रामायण का अनुवाद किया। वे बंगाली गद्य लिखने वाले प्रथम व्यक्ति थे। उनका "हिन्दुओं के शिष्टाचार और परम्पराएं" शीर्षक से लिखा गया गद्य अत्यधिक सावधानीपूर्वक अध्ययन का परिणाम था।

ई. स्थानीय सेवकाई में नेतृत्व के लिए स्वदेशी कैटेकिस्टों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए अनेक स्कूल स्थापित किए गए।

छ. अन्य प्रोटेस्टेंट मिशन :

1. 1813 और 1833 में ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार पत्र (चार्टर) का नवीनीकरण और मिशनों पर उसक प्रभावः

   ए. ईस्ट इंडिया कंपनी, एक व्यवसायिक संस्था होने के कारण, भारत में मिशनरियों की उपस्थिति से अप्रसन्न थी। वे नहीं चाहते थे कि हिन्दुओं और मुसलमानों को परिवर्तित किया जाए क्योंकि वे इससे भयभीत थे कि यह उनके व्यापार को हानि पहुंचा सकता है।

   बी. कंपनी के पास एक अधिकार पत्र था जो ब्रिटिश संसद में पास किया गया था और उसका प्रत्येक 20 वर्ष में नवीनीकरण किया जाता था। 1813 में जब यह अधिकार पत्र नवीनीकरण के लिए आया, कुछ सांसद सरकार से भारत में मिशनरी कार्य को अधिकृत करने वाले एक वाक्यांश को जोड़ने के लिए अत्यधिक निवेदन करने लगे। किन्तु वहां दूसरे अन्य सांसदों ने इसका अत्यधिक विरोध किया। अंततः यह सहमति बनी कि "भारतीयों को उनके बौद्धिक, नैतिक, और आत्मिक उत्थान के लिए उपयोगी ज्ञान दिया जाना चाहिए।" भारत में कंपनी के कार्य क्षेत्रों में सिर्फ ब्रिटिश मिशनरियों के प्रवेश की सशर्त अनुमति दी गई थी कि उनका बिशप कलकत्ता में और उनके आर्च डीकन कलकत्ता, मुंबई और चेन्नई में होंगे। अधिकार पत्र में नए वाक्यांश का लाभ उठाते हुए सी.एम.एस., एल.एम.एस., चर्च ऑफ इंग्लैण्ड और ब्रिटिश मिशनरी सोसाइटियों ने

कलकत्ता, चेन्नई और मुम्बई में कार्य करने के लिए मिशनरी भेजे। उन्होंने धीरे धीरे अपना मिशनरी कार्य फैलाया। अतः ईस्ट इंडिया कंपनी का 1813 का चार्टर/अधिकार पत्र भारत में मसीहीयत के प्रसार का अतिमहत्वपूर्ण घटक बन गया।

सी. जब 1833 में अधिकार पत्र नवीनीकरण के लिए पुनः रखा गया, ब्रिटिश भूभागों में गैर ब्रिटिशों के द्वारा भी मिशनरी कार्य को अनुमति देने का वाक्यांश जोड़ा गया। इस तरह अमरीका, जर्मनी, डेनमार्क, हॉलैण्ड और फ्राँस ने ब्रिटिशों के भारतीय भू–भागों में अपने मिशनरी कार्य आरम्भ किए। ए.बी.सी.एफ. एम. (अमेरिकन बोर्ड ऑफ कमिशनर्स फॉर फॉरेन मिशन), ए.बी.एम.यू. (अमेरिकन बैप्टीस्ट मिशनरी यूनियन), जर्मन मिशन, डैनिश और डच मिशन इत्यादि ने शीघ्र ही अपने मिशनरी भेजे। परन्तु ईस्ट इंडिया कंपनी कभी भी प्रसन्न नहीं थी। उसने सुसमाचारीय और सामाजिक उत्थान दोनों मिशनरी कार्यों को हतोत्साहित करना और उसकी निन्दा करना निरंतर जारी रखा।

# पाठ 20

अध्याय 6 (क्रमशः)

ईसवी सन् 1706 से 1857 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन (क्रमशः)

एफ. अन्य प्रोटेस्टेंट मिशन (क्रमशः)

2. एंग्लीकन मिशन्स : सर्वप्रथम एस.पी.सी.के. के द्वारा भारत में एंग्लीकन मिशनरी कार्य किया गया, जो पुस्तकें और मसीही सच्चाइयों को प्रकाशित करते हुए विशुद्ध रीति से साहित्यिक विभाग था। एस.पी.सी.के. त्रिची, तंजोर, रामनाड और तिरूनलवेली में श्वार्ट्ज के कार्य का सहयोग करने के लिए भारत आया था। एस.पी.सी.के. के पश्चात् एस.पी.जी. (सोसायटी फॉर द प्रपोगेशन ऑफ द गॉस्पल) और सी.एम.एस. (चर्च मिशनरी सोसायटी) के द्वारा मिशनरी कार्य किया गयां। 1823 में एस.पी.सी.के. ने अपना सब कार्य एस.पी.जी. को सौप दिया।

ए. एस.पी.जी. ने 1823 में मण्डलियों का प्रभार ले लिया। तिरूनलवेली एस.पी.जी. का प्रमुख केन्द्र था जहां नाडार समाज में जन अभियान आरम्भ हुआ। 1800–1802 के मध्य 6000 से अधिक लोगों ने बपतिस्मा लिया, जिनमें से लगभग 3000 लोग 63 मण्डलियों में गए। तंजोर, कलकत्ता और मुम्बई जैसे अन्य क्षेत्रों में एस. पी.जी. कार्य उतना विकसित नहीं हुआ। बाद में उन्होंने दिल्ली, पूणे, त्रिची और चेन्नई में भी कार्य किया। दिल्ली, मेरठ, लखनऊ (बग़ावत के दरम्यान्) और चेन्नई में मसीह के लिए शहीद होने का सम्मान भी एस. पी.जी. को मिला। 19वीं सदी के अन्त तक बिहार के छोटा–नागपूर में एस.पी.जी. के 1000 से अधिक लूथरन मसीही थे।

बी. चर्च मिशनरी सोसाइटी :

(1) सी.एम.एस. ने अपना कार्य कोलकात्ता में 1807 में और चेन्नई में 1814 में आरम्भ किया। कोलकत्ता का कार्य मद्रास की तरह प्रगति नहीं किया। फिर भी सी.एम.एस. ने कलकत्ता से पटना, गोरखपुर से बनारस, आगरा, दिल्ली और उड़ीसा में कार्य विस्तार किया। चेन्नई में जो कार्य आरम्भ किया गया था वह आगे चलकर तिरूनलवेली, मायावरम, गुंटूर, हैदराबाद, बैंगलोर और कोट्टायम तक विस्तारित किया गया।

(2) सी.टी.ई.रेनियस सी.एम.एस. मिशनरियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध मिशनरी हुए। रेनियस बहुत वरदान प्राप्त लूथरन सुसमाचार प्रचारक थे जिसके समय में तिरूनलवेली में बहुत बड़ा जनअभियान आरम्भ हुआ। बढ़ते कार्य से सामंजस्य बनाए रखने के लिए रेनियस ने सी.एम.एस. को सुझाव दिया कि छः धर्मशिक्षा देनेवाले कैटेकिस्टों का और एक एंग्लो–इंडियन का अभिषेक किया जाए। वह उनका अभिषेक लूथरन विधि से चाहते थे जैसा पूर्व में लूथरन मिशनरियों के द्वारा सत्यानन्दन और अन्यों का अभिषेक किया गया था। किन्तु सी.एम.एस. समिति ने महसूस किया कि उनका अभिषेक एंग्लीकन बिशप के द्वारा होना चाहिए जो भारत में थे। रेनियस ने एक पुस्तक का प्रकाशन किया जिसमें उसने एंग्लिकनों के विश्वासों और अभ्यासों की खुलकर आलोचना की। यह 1835 में दुःखद विभाजन का कारण बना। सी.एम.एस. के साथ जो अन्य लूथरन मिशनरी कार्य कर रहे थे वे भी रेनियस के साथ संवेदना प्रगट करते हुए त्यागपत्र दे दिए। थोड़े अन्तराल के पश्चात रेनियस जर्मन इवेंजलिकल मिशन के मिशनरी के रूप में स्वतंत्र कार्य करते हुए सी.एम.एस. के क्षेत्र में आए। वे 67 मण्डलियों को अपने साथ सी. एम.एस. से बाहर खींच ले गए। उन्होंने उस क्षेत्र में बहुत कार्य किए। 1838 में रेनियस की मृत्यु हो गई। दो वर्षों पश्चात् अन्य जर्मन मिशनरी अपनी अपनी मण्डलियों के साथ सी.एम.एस. में लौट आए।

3. बैप्टिस्ट मिशन्स : बंगाल में बैप्टिस्ट कार्य इंग्लैण्ड के बैप्टिस्ट मिशनरी सोसाइटी (बी.एम.एस.) के द्वारा आरम्भ किया गया था। बाद में अमेरीकी बैप्टिस्ट सोसाइटी पहुंची और उसने आन्ध्रा, ओडिशा और असम में कार्य किया। इन

बैप्टिस्ट मिशनों ने सुसमाचार के कारण कुछ यूरोपीय और भारतीय लोगों के शहीद होने का सम्मान प्राप्त किया। 1853 में दिल्ली में शहीद हुए विलायत खान इनमें सब से आगे थे।

4. मेथोडिस्ट मिशन्स : मेथोडिस्ट मिशन्स दो प्रकार के थे अर्थात् ब्रिटिश (नान–इपिस्कोपल) और अमेरिकन (इपिस्कोपल)।

ए. ब्रिटिश मेथोडिस्ट मिशन ने बंगाल, और महाराष्ट्र, मद्रास, त्रिची और बैंगलोर के कुछ भागों में अपना मिशन कार्य केन्द्रित किया। मद्रास में उन्होंने वेसलियन महाविद्यालय की स्थापना की। उन्होंने मद्रास के आस पास कुछ ग्रामीण कलीसियाओं की स्थापना भी की। त्रिची में भी उन्होंने अच्छा कार्य विकसित किया और अस्पताल, लड़के लड़कियों के लिए हाइस्कूल और शिक्षक प्रशिक्षण स्कूल इत्यादि आरम्भ किए।

बी. अमेरिकन मेथोडिस्ट मिशन : 18वीं सदी के मध्य में अमेरिकन मेथोडिस्ट मिशन ने अपना कार्य मुम्बई और उत्तर प्रदेश में केन्द्रित किया। उ.प्र. में उनका कार्य अत्यधिक फलवन्त रहा। उन्होंने हैदराबाद, मद्रास और टूटीकोरिन में भी कार्य आरम्भ किये। उन्होंने हैदराबाद में संतोषजनक फल बटोरे परन्तु मद्रास में नहीं।

# पाठ 21

अध्याय 6 (क्रमशः)

ईसवी सन् 1706 से 1857 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन (क्रमशः)

एफ. अन्य प्रोटेस्टेंट मिशन (क्रमशः)

5. कॉन्ग्रिगेशनल मिशन्स : एल.एम.एस. (लंडन मिशनरी सोसायटी) और ए.बी.सी.एफ.एम. (अमेरिकन बोर्ड ऑफ कमिशनर्स फॉर फॉरेन मिशन) के द्वारा भारत मे कॉन्ग्रिगेशनल कार्यों का प्रतिनिधित्व किया जाता था।

ए. ब्रिटिश एल.एम.एस. ने 1807 में अपना कार्य पहले कोप कोमरिन से आरम्भ किया तब वहां से कोलकत्ता, तब मद्रास तब नागरकोइल में किया। नागरकोइल का कार्य सर्वाधिक सफल रहा। नागरकोइल का मिशनरी कार्य तिरूनलवेली में भी फैला। मद्रास का कार्य बैंगलोर तक फैला जहां उन्होंने प्रसिद्ध युनाइटेड थियालॉजिकल कॉलेज की स्थापना की। एल.एम.एस. ने उत्तर भारत में कोलकत्ता में एक महाविद्यालय की स्थापना के साथ कुष्टरोग आश्रम, अनाथालय, औद्योगिक स्कूल, अस्पताल इत्यादि जैसे अन्य सामाजिक कार्य आरम्भ किए। एल.एम.एस. ने पश्चिम भारत में मुम्बई में कार्य आरम्भ किया और अपने मिशनरी कार्य को अहमदनगर और सूरत तक विस्तार दिया। उत्तर भारत के सर्वाधिक कार्य या तो बन्द कर दिए गए या अन्य मिशनों को हस्तांतरित कर दिए गए। एल.एम.एस. सिर्फ नागरकोइल में ही सफल रहा। अधिक लोगों ने मसीह को ग्रहण किया और एक बड़ा मसीही समाज बनाया गया।

(1) डब्ल्यू. टी. रिन्गलटाउबे नामक एक जर्मन लूथरन मिशनरी एल.एम.एस. का महत्वपूर्ण पायोनियर मिशनरी था जो पहले एस.पी.सी.के. के साथ 1797–98 में कोलकत्ता में कुछ माह बिता चुका था। वह निराश होकर यूरोप लौट चुका था। वह 1804 में लन्दन मिशनरी सोसाइटी के साथ पुनः भारत लौटा। वह ट्रांकोबार पहुंचा और बाद में उसे तिरूनलवेली जिला जाने कहा गया जहां प्रतिसाद अच्छा था।

(2) समबवा समाज का वेदामणिक्कम नाएक एक नवविश्वासी एक नए मिशनरी के आगमन का समाचार सुनकर रिंगलटाउबे के पास पहुंचा और उससे ट्रावनकोर आने का निवेदन किया। रिगलटाउबे 1806 में ट्रांकोबार छोड़कर पलायमकोट्टई गया जो उसका अगले तीन वर्षों के लिए मुख्यालय बन गया। वहां से वह मलयादी गया जहां उसने बीस लोगों को बपतिस्मा दिया। 1809 में वह अंग्रेजों से अनुमति प्राप्त करके ट्रावनकोर चला गया। वहां उसने चैपल और स्कूल बनाए।

(3) वेदामणिक्कम को प्रमुख कैटेकिस्ट बनाया गया। तब तक नए लोग सिर्फ वेदामणिक्कम की जाति ही से आए। 1810 से नाडार समाज के लोग भी बपतिस्मा दिए जाने की मांग करने लगे। पहले तो उसने उनका बपतिस्मा करने से इन्कार कर दिया क्योंकि उसे उनकी मंशा पर संदेह था। तौभी अगले वर्ष के दरम्यान उसने नाडार समाज से 400 लोगों को बपतिस्मा दिया।

(4) उस समय से नाडार समाज से और भी लोग ट्रावनकोर में मसीही हो गए। चैपल भवन बनाए गए और स्कूल आरम्भ किए गए। रिंगलटाउबे ने कुछ जवानों को चुना और उन्हें कैटेकिस्ट बनने का प्रशिक्षण दिया। वह अत्यधिक सरल जीवन जीता था। वह मिट्टी के एक छोटे घर में रहता था और अपनी अधिकांश आमदनी बांट देता था। बहुधा उसके पास स्वयं के लिए पर्याप्त भोजन और वस्त्र की कमी रहती थी। वह सदैव यात्राएं करता रहता, प्रचार करता रहता, शिक्षा देता रहता, पवित्र विधियों को पूरा करता रहता और अकाल के समय राहत कोष इत्यादि संग्रह करता और बांटता रहता था।

(5) रिंगलटाउबे कुछ नवविश्वासियों के उद्देश्यों से प्रसन्न नहीं थे, एक ऐसा विषय जिसने अन्ततः उसे

निराशा में डाल दिया। 1815 में उसने स्वयं को कार्य के लिए अक्षम पाया और बीमार हो गया। जब तक कि उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं आ जाता उसने वेदामणिक्कम को कार्यभार सौंपा और इस्तीफा देकर भारत छोड़ दिया।

(6) रिगलटाउबे ने अपने इस्तीफे में स्पष्ट लिखा कि उसका कार्य ठोस नींव पर बनाया गया था। उसके उत्तराधिकारी चार्ल्स मीड के 1817 में आने के पश्चात नाडारों में एक बड़ा जन अभियान आरंभ हुआ जो 19वीं शताब्दी में भी चलता रहा।

बी. अमेरिकन बोर्ड ऑफ कमीशनर्स फॉर फॉरेन मिशन : एबीसीएफएम ने अपना पहला कार्य 1834 में मदुरै (तमिलनाडु) में आरंभ किया। वे पूरे जिले में कलीसियाएं स्थापितकरने में ठीक ठाक रूप से सफल रहे। उन्होंने प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक और महाविद्यालय स्तर के शिक्षण संस्थान आरंभ करने के साथ शिक्षक प्रशिक्षण, औद्योगिक प्रशिक्षण, पासबान प्रशिक्षण और सुसमाचारीय प्रशिक्षण संस्थान भी आरंभ किए। अमेरिकन कॉलेज ऑफ मदुरै, लेडीडोके कॉलेज ऑफ मदुरै, मदुरै में अमेरिकन अस्पताल और पासुमलाई में थियालॉजिकल कॉलेज मिशन द्वारा संचालित कुछ संस्थांएं थीं। मुम्बई और पश्चिम भारत में उनका मिशनरी कार्य फलदायक नहीं रहा।

# पाठ 22

अध्याय 6 (क्रमशः)

ईसवी सन् 1706 से 1857 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन (क्रमशः)

एफ. अन्य प्रोटेस्टेंट मिशन (क्रमशः)

6. लूथरन मिशन्स : लूथरन लगभग पूरे भारत में पाए जाते थे। वे जर्मन, स्वीडिश और अमेरिकन में विभाजित थे बिहार में छोटा–नागपूर उनके कार्य का मुख्य क्षेत्र था।

7. प्रेसबिटेरियन मिशन्स :

ए. भारत में प्रेसबिटेरियन इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड, वेल्स, आयरलैण्ड, हॉलैण्ड, संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड से आए थे। उन्होंने अनेक सर्वश्रेष्ठ महाविद्यालय बनाए जिनमें मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज और मुम्बई मे विलसन कॉलेज आते हैं।

बी. निम्नलिखित क्षेत्र प्रेसबिटेरियन मिशन कार्य के केन्द्र थे :

| मिशन | कार्य क्षेत्र |
|---|---|
| स्कॉटिश प्रेसबिटेरियन मिशन | मद्रास |
| बंगाल, बॉम्बे आयरलैण्ड प्रेसबिटेरियन मिशन | गुजरात |
| कनाडा प्रेसबिटेरियन मिशन | उड़ीसा |
| न्यू ज़ीलैण्ड प्रेसबिटेरियन मिशन | दिल्ली |
| हरीयाणा, पंजाब अमेरिकन प्रेसबिटेरियन मिशन | इलाहाबाद |
| आस्ट्रेलिया प्रेसबिटेरियन मिशन | नई दिल्ली |
| वेल्स प्रेसबिटेरियन मिशन | असम |

8. चर्च ऑफ स्कॉटलैण्ड मिशन (सी.एस.एम.) : 1829 मे चर्च ऑफ स्कॉटलैण्ड ने चर्च ऑफ स्कॉटलैण्ड मिशन स्थापित किया। अलेक्ज़ेंडर डफ सी.एस.एफ. के प्रथम मिशनरी थे। डफ मध्यम वर्गीय परिवार से आते थे। वह प्रतीभाशाली विद्वान थे जो मिशनरी लगन से ओत प्रोत थे। उसने स्वयं को मिशनरी कार्य के लिए समर्पित किया और सी. एस.एम. के प्रथम मिशनरी के रूप में बंगाल आए।

ए. सी.एस.एम. ने उनसे कहा कि वे शिक्षा के कार्य पर ध्यान केन्द्रित करें और चर्च स्थापित करने पर ध्यान न दें। उन्हे अपने नवविश्वासियों का अन्य मिशनों को सौंपने का निर्देश दिया गया था जिसे उन्होंने पूरा किया।

बी. डफ इस बात के कायल थे कि यदि भारतीयों को मसीही विश्वास में लाना है तो उन्हे पश्चिमी धर्म, विज्ञान और दर्शनशास्त्र के द्वारा सभ्य बनाया जाना चाहिए। वे भारतीय युवावों को अंग्रेजी माध्यम से उच्च शिक्षा देना चाहते थे। डफ ने 1830 में कलकत्ता में उच्च शिक्षा की संस्था आरंभ किया। बाइबल पाठ्य पुस्तक के रूप में उपयोग की गई। प्रथम दिवस में डफ ने विद्यार्थियों को पवित्र बाइबल की एक एक प्रति दी और उन्हे अंग्रेजी में पढ़ाया।

सी. प्रसिद्ध समाज सुधारक राजा राम मोहन रॉय ने डफ को पूरा समर्थन दिया और विद्यार्थियों (कलकत्ता के अभिजात्य हिन्दू वर्ग) को न सिर्फ अंग्रेजी सीखने के लिए किन्तु बाइबल का अध्ययन करने हेतु भी उत्साहित किया।

डी. भारत के अन्य मिशनरियों ने डफ की बुद्धि के कार्यों पर संदेह किया। तथापि अति शीघ्र उन्होंने दिखा दिया कि उनकी विधि भारतीयों को शिक्षित करने के लिए उपयुक्त थी।

ई. डफ ने अभिजात हिन्दुओं के लिए व्याख्यान का आयोजन किया जिसका परिणाम यह रहा कि अनेक ब्राह्मण और ऊँची जाति के हिन्दुओं ने यीशु को ग्रहण किया। यद्यपि नवविश्वासियों का विरोध हुआ, वे ऊच्च वर्ग से होने के कारण स्थिर बने रहे। कृष्ण मोहन मुखर्जी, एम.सी.घोष, के.सी.चटर्जी और अन्य उनमें से कुछ थे जो आगे चलकर बंगाल में कलीसिया के महान अगुवे बने।

एफ. अलेक्जेंडर डफ ने अपने अमेरीका और इंग्लैण्ड के दौरों के समय और मिशनरी भेजने का निवेदन किया। परिणामतः अनेक मिशनरी भारत आए। 1843 में चर्च ऑफ स्कॉटलैण्ड का दो भागों में विभाजन हो गया : (1) मूल चर्च ऑफ स्कॉटलैण्ड (सी.एस.एम) (2) फ्री चर्च ऑफ स्कॉटलैण्ड (एफ.सी.एस.)।

डफ ने एफ.सी.एस. के साथ को चुना और वर्तमान मिशनरी कार्य को सी.एस.एम. के द्वारा भेजे गए मिशनरियों के हाथों सौंप दिया। एफ.सी.एस. ने भी कलकत्ता में अपना मिशन मुख्यालय खोला और डफ को अपना मिशनरी बनाया। एफ.सी.एस. मिशन की ओर से डफ ने कलकत्ता में एक अन्य शिक्षा संस्थान आरंभ किया। संस्थाओं के द्वारा नए विश्वासी बनाए गए।

जी. बंगालियों और यूरोपियनों दोनों के मध्य डफ का बहुत सम्मान था। डफ सैन्य विद्रोह (1857–59) के दौरान भी नहीं भागे। सैन्य विद्रोह के पश्चात् डफ ने ब्रिटिशों से निवेदन किया कि वे विद्रोहियों के साथ दया और प्रेम दिखाएं। जब ब्रिटिश सरकार ने भारत को ईस्ट इंडिया कंपनी से ले लिया, तब डफ ने शिक्षा के क्षेत्र में बहुत योगदान दिया। अन्य मिशनों ने भारत में अनेक स्थानों में कई शिक्षण संस्थान बनाए। डफ 1883 में सेवानिवृत हो गए और स्वदेश लौट गए।

# पाठ 23

## अध्याय 7 :

## ईसवी सन् 1800 से भारत में रोमन कैथोलिक मिशन्स

क. विस्तार

1. 18वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक भारत में रोमन कैथोलिक कार्य फूला–फला। किन्तु उस सदी के उत्तरार्ध में अनेक कारणों से उसमें अवनति होने लगी। 19वीं सदी के आरंभ मे हानि की दशा और खराब हो गई। चर्च इतिहासकारों ने इसे भारत में रोमन कैथोलिक मिशंस का सबसे अधिक अंधकारमय समय कहा है।

2. 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पतन होते कैथोलिक मिशन ने भी उस काल के प्रोटेस्टेंट मिशनरी अभियानों के समानांतर जागृति और नवीनीकरण का अनुभव आरंभ किया। इसलिए 19वीं शताब्दी का उत्तरार्ध "आधुनिक मिशनरी अभियान" का समय कहलाया। कैथोलिक मिशन के विकास के कारक ये हो सकते हैं :

   ए. जब पोप ने भारत में संगठनात्मक अधिकार क्रम का निर्धारण कर दिया तब आन्तरिक संघर्ष हल हो गया।

   बी. उन्होंने अपने मिशनरी कार्य में अधिक स्वतंत्रता का अनुभव किया।

   सी. यूरोप में कैथोलिक चर्च में जागृति और चर्च और सरकार के मध्य एक सीमा तक के अलगाव का परिणाम अधिक मिशनरी प्रयास रहा।

   डी. अनेक धार्मिक सेवा विभाग जिन्होंने भारत में कार्य किये, जैसे कि बेनेडिक्टाइंस, कार्मेलाइट्स, लिटिल सिस्टर्स ऑफ सैक्रेड हार्ट्स, उन्होंने अनेक लोगों को कैथोलिक कलीसिया में लाया।

3. नव आगंतुकों में जेसुइट्स (सोसाइटी ऑफ जीजस) प्रमुख थे। 1838 में फ्रांसिसी जेसुइट्स मदुरै आए और उन्होंने वहां लम्बे समय से उपेक्षित और अपभ्रष्ट समाज को पाया जहां पूर्व में उनकी ही सोसाइटी ने कार्य किया था। चूंकि मदुरै में मिशनरी कार्य में वृद्धि हुई, 1847 में वह महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया। नए मिशनरियों ने रॉबर्ट डी नोबिली की कार्य विधि का अनुसरण नहीं किया।

4. अंग्रेज, आयरिश और फ्रांसिसी जेसुइट्टों ने 1834 में बंगाल में कार्य आरंभ किया और 1859 में बेल्जियम के मिशनरियों ने 1859 में उसे अपने हाथों में ले लिया। बेलजियम के मिशनरियों ने पश्चिम बंगाल और उड़ीसा में कार्य किया और आगे चलकर छोटा–नागपूर में भी कार्य किया। 1854 में जर्मन जेसुइटों ने कार्मेलाइटों से मुम्बई का कार्य ले लिया और गुजरात और पुणे में कार्य विकसित करने आगे बढ़े। इटली के जुसइट 1877 में कार्मेलाइटों का कार्य आगे बढ़ाने के लिए मंगलोर पधारे।

5. उत्तर भारत में पुराने कपुचीन का कार्य तब तक चलता रहा जब तक कि वे बिहार से पंजाब के बड़े क्षेत्र में नहीं फैल गए। सरधना में बेगम समरू नाम की एक विधवा अपने पति की मृत्यु के पश्चात मसीही बन गई; उसका पति दिल्ली का मुगल था। वह समर्पित स्त्री थी और वह अपने धन से अनेक कलीसिया भवन बनवाई।

6. 1830 में आगरा बहुत महत्वपूर्ण स्थान बन गया जहां 1838 में मसीही समाज में लगभग 6000 लोग थे और 1856 तक यह संख्या बढ़कर 23,000 हो गई। किन्तु सैन्य विद्रोह में बहुत हानि उठानी पड़ी।

7. दक्षिण में कार्य पॉन्डीचेरी से मैसूर, कोयम्बटूर और कुम्बाकोणम तक बढ़ गया। मद्रास के मिशनरियों ने विजयानगरम, हैदराबाद और नागपूर तक सेवा दी। 1876–78 के अकाल के कारण 1875 में आन्ध्र में वंचित वर्गों के मध्य जन अभियान आरंभ हुआ।

8. महिलाओं और स्त्रियों के मध्य किये गये कैथोलिक कार्य ने कलीसिया बनाने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

9. 19वीं शताब्दी के अंतिम चौथाई में कैथोलिक मिशनों ने कार्य विस्तारित किया और उन फलों का संकलन किया जो शुद्रों, अनुसूचित जातियों और जनजातियों में से आए थे।

ख. सामाजिक क्रियाकलाप : कैथोलिक सिर्फ सुसमाचार प्रचार ही नहीं किए किन्तु समाजिक क्रियाकलापों से भी जुड़े हुये थे। भिन्न भिन्न प्रकार के क्रियाकलापों को आरंभ कराया गया।

1. नर्सरी से महाविद्यालय तक सब स्तर की शिक्षा। मुम्बई में सेंट जेवियर कॉलेज और मद्रास में लोयोला कॉलेज बहुत सम्मानित कैथोलिक कॉलेज हैं। मसीहियों की युवा पीढ़ी को प्रशिक्षित करना और अमसीहियों को अच्छे सिद्धान्त सिखाना इनका उद्देश्य था। छात्रावास और अनाथालयों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायीं। तकनीकी विद्यालय आरंभ किए गए। व्यवसायिक प्रशिक्षण शालाओं ने विद्यार्थियों को अपने पैरों पर खड़े होने में सहायता की। मसीही शिक्षण संस्थाओं पर बहुधा धर्मांतरण कराने के आरोप लगे। कुछ विद्यार्थियों ने तो मसीही विश्वास को ग्रहण किया परन्तु सब ने नहीं।

# पाठ 24

अध्याय 7 :

ईसवी सन् 1800 से भारत में रोमन कैथोलिक मिशन्स (क्रमशः)

2. साहित्य : कैथोलिकों ने अपने विश्वास को अनेक प्रकार के साहित्य के द्वारा फैलाया। 1922 में "द लाइट ऑफ दी ईस्ट" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया गया और भारतीय लोग यीशु को समझ सकें और ग्रहण कर सकें के विचार से उसे अनेक वर्षों तक प्रकाशित किया जाता रहा। विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनेक पत्राचार पाठ्यक्रम संचालित किए गए। मसीही ग्रंथालयों से प्रसारित किए गए मसीही साहित्य ने यीशु मसीह को जानने में अनेक लोगों की सहायता की।

3. वंचित वर्गों को ऊँचा उठानाः आदिवासियों और वंचित वर्गों के मध्य जन अभियान आरंभ हुए। इन लोगों को आत्मिक और सामाजिक रूप से ऊँचा उठाना इसमें कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट दोनों मसीही मिशनों की उत्कृष्ट विशेषता थी। भण्डार घर, चांवल बैक, औद्योगिक स्कूल, और महाविद्यालय का परिचय कराने के द्वारा कैथोलिक मिशनों ने छोटी जाति के लोगों के उत्थान में सहायता की। जहां कहीं आवश्यक हुआ वहां कैथोलिक मिशनों ने, विशेषकर अकाल, बाढ़ या अन्य आपदा के समय में, राहत कार्य संचालित किए। भारत में कैथोलिक नन्स के द्वारा गरीबों और जरूरतमंदों के लिए अनेक अस्पताल और कुष्ठरोग आश्रम चलाए गए।

   ए. मदर टेरेसा ऐसी महिलाओं का एक उदाहरण है। अल्बानिया मूल की एक महिला 1929 में भारत आई। (आगे चलकर उन्होंने भारतीय नागरिकता ली।) पूर्वी कोलकत्ता के एक कॉनवेंट स्कूल में लगभग 20 वर्ष सेवा देने के पश्चात् उन्होंने गरीबों के मध्य रहते हुए उनकी सेवा की वह बुलाहट प्राप्त की जिसे वे "बुलाहट के भीतर बुलाहट" कहती थीं।

   बी. उन्होंने 1938 में गरीबों के मध्य कार्य करना आरंभ किया और दो वर्षों पश्चात् एक संगठन बनाने की अनुमति प्राप्त की जो "सिस्टर्स ऑफ चैरिटी" बना। उनके अपने ही शब्दों में "भूखों, नंगों, दिव्यांगों, आवासहीनों, दृष्टिहीनों, कुष्ठरोगियों की, उन सब लोगों की जो स्वयं को समाज में अनचाहा, अप्रिय, परवाह से वंचित महसूस करते हैं, जो स्वयं को समाज के लिए बोझ बन गया–सा महसूस करते हैं और सब के द्वारा त्याग दिए गए हैं, उन सब की सेवा करना" उनका मिशन था।

   सी, 1997 में उनकी मृत्यु के समय तक उनके अनाथालयों, एड्स पीड़ित सेवा सहायता केन्द्रों में शरणार्थियों, दृष्टिहीनों, दिव्यांगों, वृद्धों, शराबियों, निर्धनों और बेघरों, बाढ़–महामारियों–और–अकाल पीड़ितों की सेवा के लिए वैश्विक स्तर पर 4000 से अधिक सिस्टर्स जुड़ चुकी थीं। ये 123 देशों में 610 मिशन सेवा केन्द्रों के माध्यम से कार्यरत हैं जिनमें एच.आई.वी. या एड्स पीड़ितों, कुष्ठरोगियों और क्षय रोगियों, सूप रसोई, बच्चों और परिवार परामर्श कार्यक्रमों, व्यक्तिगत सहायकों, अनाथालयों और स्कूलों के कार्य किए जाते हैं।

4. स्वदेशीकरण :

   ए. 1866 से कैथोलिक मिशनरियों ने स्थानीय अगुवे तैयार करने के कार्य को अधिक महत्व दिया। तब से भारतीय पादरियों और उनके प्रशिक्षण के लिए गोवा और मलाबार में सेंमिनरियों की संख्या में वृद्धि होती आई है।

   बी. तमिलनाडु में कैथोलिक कार्य के आरंभिक दिनों में मिशनरियों ने "ले कैटेकिस्टों" का उपयोग तो किया किन्तु उन्हें पादरी बनाने का कोई प्रयास नहीं किया। किन्तु 19वीं शताब्दी के मध्य से भारतीय पादरियों को तैयार किया और विभिन्न मिशन क्षेत्रों में नियुक्त किया जाता रहा। पादरियों की शिक्षा संस्थाएं (सेमीनरी) बनायी गईं। परिणाम चौंकाने वाला था। 1923 में टूटिकोरिन के बिशप, फादर एफ.टी.रोश, लतीनी संस्कार से

भारतीय डायोसिसन बिशप अभिषेक किए जाने वाले प्रथम भारतीय थे। 15 आर्च बिशपों में से बारह और 47 डायोसिसन बिशपों में से 26 भारतीय हुए हैं।

सी. 19वीं शताब्दी में महिला सेवादल कार्य करने भारत आए। उनके नमूनों पर चलते हुए भारतीय स्त्रियों ने भी बड़ी संख्या में सेवा के लिए समर्पण किया।

डी. कुछ रोमन कैथोलिक कलीसियाओं में मसीहियों के मध्य जाति–भिन्नता की कोई पहचान नहीं थी। फिर भी अनेक वर्षों तक छोटी जातियों से आए हुए व्यक्ति पादरी की सेवाओं के योग्य नहीं माने जाते थे। सामान्य रूप में रोमन कैथोलिक कलीसिया ने जाति व्यवस्था पर सीधे चोट तो किया था किन्तु उसके सामाजिक पक्ष को भारतीय जीवन के अपरिहार्य प्रसंग के रूप में स्वीकारने की ओर झुकाव बनाए रखा। मिशनरियों ने उनमें एकता के क्रमिक विकास की आशा की थी।

# पाठ 25

## अध्याय 8 :

## ईसवी सन् 1858 से 1947 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन्स

क. जन अभियान और कलीसिया पर उनके प्रभाव

1. ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में मिशनरी कार्य का विरोध किया क्योंकि वे उनको अपना विरोधी नहीं बनाना चाहते थे जिनके साथ वे व्यापार कर रहे थे। 1813 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार–पत्र का नवीनीकरण भारत में मसीही मिशनों के लिए महत्वपूर्ण था। कम्पनी पर दबाव बनाया गया कि उसके द्वारा भारत में मिशनों पर लगाए गए प्रतिबंधों को हटाया जाये। 1833 में अधिकार–पत्र के एक और नवीनीकरण ने गैर ब्रिटिश मिशनों पर से प्रतिबंधों को भी हटा दिया और इस प्रकार अमेरिका, हॉलैण्ड, जर्मनी, और अन्य देशों के मिशनरियों को आने की अनुमति दे दी गई। अठारवीं सदी के समापन के समय से प्रोटेस्टेंट और रोमन कैथोलिक मिशनरी बड़ी संख्या में भारत पहुंचने लगे थे। मिशनरी, वंचित अनुसूचित जनजाति समूहों में बढ़ते जन अभियान के गवाह बन रहे थे।

2. कैथोलिकों ने अनुकूलन (एडॉप्टेशन) के सिद्धान्त का अनुसरण किया और जाति को धर्म के रूप में नहीं किन्तु सामाजिक व्यवस्था के रूप में देखा। उन्होंने जाति व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करने का चुनाव किया। जबकि आम तौर पर प्रोटेस्टेंट मिशनरियों ने जाति को हिन्दुओं के द्वारा पारित धार्मिक प्रथा स्वीकार किया, इसलिए उन्होंने जाति व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करना नहीं किन्तु उसका खण्डन करने का चुनाव किया। 1850 के आते तक प्रोटेस्टेंट मिशनरी जाति का खण्डन करने ही नहीं परन्तु उसे कलीसिसाओं की सीमा के भीतर से उखाड़ फेंकने के लिए एक मत हो चुके थे। जब वंचित वर्गों से जन अभियान आरंभ हुआ तक मिशनरी उसे कलीसिया में स्वीकार करने के लिए तैयार ही नहीं थे। वह वंचित वर्ग था, मिशनरी नहीं, जिन्होंने जन अभियान आरंभ करने की पहल की थी। उन्होंने उन अनुमानों को चुनौती दी जिस पर मिशनरी दशकों से कार्य कर रहे थे। मिशनरियों में भय था कि यदि कलीसियाएं "अछूतों" से भर गईं तो ऊँची जाति के हिन्दू उनके साथ जुड़ना नहीं चाहेंगे।

3. वे "भक्तिवाद" के सिद्धान्त से प्रभावित हुए थे और विश्वास करते थे कि व्यक्ति को अकेले अकेले ही विश्वास परिवर्तन करना चाहिए। वे भारतीय सामाजिक व्यवस्था को नहीं समझे जो समुदाय–उन्मुख है अर्थात् भारतीय अकेले की अपेक्षा सामूहिक रीति से कार्य करने के आदि हैं। अधिकांश प्रोटेस्टेंट मिशनरी ऊँची जाति से एक एक व्यक्ति के परिवर्तन का प्रयास करते रहे। उन्होंने आशा की कि यदि इनमें से एक बड़ी संख्या में लोग मसीह को ग्रहण कर लेते हैं तो बाकी की जनसंख्या के लिए इनका अनुसरण करना सरल होगा। परन्तु ऊँची जाति के मात्र कुछ ही हिन्दू मसीही बने। वंचित वर्गों और आदिवासियों से जन अभियानों ने उनके पूर्वानुमानों को बदल दिया। अनेक मिशनरी महसूस करने लगे कि भारतीय संदर्भ में परमेश्वर की कार्य शैली भिन्न है।

4. 19वीं शताब्दी के जन अभियानों की आम रिपोर्ट :

   ए. दक्षिण ट्रावनकोर (कन्या कुमारी) और तिरूनलवेली : 1810 में जब रिगलटाउबे एक एल.एम.एस. मिशनरी दक्षिण ट्रावनकोर में आदि–द्रविडों (सम्बारा जाति) के मध्य प्राथमिक रीति से कार्य कर रहे थे तब नाडार समाज में जन अभियान आरंभ हो गया। नाडारों ने स्वयं ही बपतिस्मा की मांग कर दी। यद्यपि रिगलटाउबे ने पहले तो उन्हें मना कर दिया, उनके अभिप्राय से सशंकित होने पर भी अगले वर्ष 400 लोगों को बपतिस्मा दे दिया। इस जाति के लोग दक्षिण ट्रावनकोर से तिरूनलवेली के मध्य प्रमुख मसीही समाज बन गए। रिंगलटाउबे के पश्चात् 1817 में चार्ल्स मीड मिशनरी होकर इस क्षेत्र में आए। नाडारों का एक बड़ा जन अभियान आरंभ हुआ जो पूरी उन्नीसवीं शताब्दी में चला। इस अभियान ने चर्च ऑफ साउथ इंण्डिया के कन्याकुमारी डायोसिस को जन्म दिया। 1820 में एक अतिगुणी सुसमाचार प्रचारक सी.टी.ई. रीनियस को

सी.एम.एस. मिशनरी के रूप में तिरूनलवेली भेजा गया। नाडार समाज से जन अभियान आरंभ हुआ। दक्षिण ट्रावनकोर और तिरूनलवेली का जन अभियान निरंतर बढ़ता गया। तिरूनलवेली अपने प्रशिक्षित ग्रामीण कार्यकर्ताओं के लिए जाना जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक तिरूनलवेली और ट्रावनकोर में प्रोटेस्टेंट मसीहियों की सबसे बड़ी आबादी पाई जाती थी। तिरूनलवेली अपने बल पर 1896 में डायोसिस बन गया।

# पाठ 26

अध्याय 8 :

ईसवी सन् 1858 से 1947 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन्स (क्रमशः)

बी. आन्ध्र प्रदेश : दि अमेरिकन बैप्टिस्ट मिशन ने 1836 में नेल्लोर जिले में कार्य करना आरंभ किया। मडिगा जाति के मध्य 1866 में जन अभियान तब आरंभ हुआ जब पेरियाह नामक एक शिक्षित योगी मसीही गुरू बन गया। 1876–1878 के अकाल के दरम्यान ओन्गोल में मिशनरी जे.ई.क्लो ने सरकार से एक कार्य लेकर राहत कार्य आरंभ किया। अपने लोगो और अन्यों को कार्य उपलब्ध कराना उनका उद्देश्य था। भोजन और कार्य के लिए मडिगा बड़ी संख्या में कैम्प में आए। वे यह जान गए थे कि उनके साथ दूसरे स्थानों की तुलना में जहां सजातीय मडिगाओं की अपेक्षा ऊँचीं जाति के हिन्दू पर्यवेक्षक थे यहां अच्छा व्यवहार किया जाएगा। जब वे केनाल योजना में कार्य कर रहे थे, वे मसीही आराधना में सम्मिलित हुए और प्रतिदिन सुसमाचार सुना। मडिगाओं की बड़ी संख्या में बपतिस्मा चाहा। परन्तु क्लो ने यह जानते हुए कि उनका मुख्य ध्येय कार्य और मजदूरी थी अकाल समाप्ति के पूर्व तक उन्हें बपतिस्मा देने से मना किया। उस समय क्लो ने सुना कि कुछ कैथोलिक मिशनरी उन लोगों को बपतिस्मा देने को तैयार थे अतः वे उन्हे बपतिस्मा देना आरंभ किए। हजारों का बपतिस्मा हुआ –एक ही दिन में 2,222 लोगों का बपतिस्मा हुआ। कलीसिया की सदस्यता 61,000 से अधिक हो गई। अकाल के पश्चात् उन समाजों से और भी लोग कलीसियाओं में जुड़े जहां अन्य मिशनरियों ने सेवाएं दी थीं।

सी. पंजाब : चूड़ा जन अभियान का आरंभ दित्त नामक एक लंगड़े और अशिक्षित व्यक्ति के द्वारा हुआ था जो सियालकोट में रहता था जहां यूनाइटेड प्रेसबिटेरियन मिशनरी कार्य करते थे। उसने जट नामक एक नट से सुसमाचार सुना था और मसीही विश्वास को ग्रहण किया था। जट उसे 1873 में सियालकोट में मिशनरी के पास ले गया। दित्त ने दो विनतियां कीं। प्रथम, उसे तत्काल बपतिस्मा दिया जाए। द्वितीय, उसे अपने गांव लौटने की अनुमति मिले। मिशनरी ने दूसरे निवेदन को बहुत हिचकते हुए स्वीकार किया। बपतिस्मा के पश्चात् दित्त अपने लोगों में गवाही देने लगा। चूड़ा जन अभियान आरंभ हो गया। दित्त अनेकों को बपतिस्मा के लिए साथ लाया। अधिकांश सुसमाचार प्रचार का कार्य स्वयं चूड़ा विश्वासियों के द्वारा किया जा रहा था। मिशनरियों ने शहरी ऊँची जातियों के लोगों से अपना ध्यान हटाकर ग्रामीण चूड़ा समाज की ओर फेर दिया। असाधारण वृद्धि काल आगे था। चूड़ा जन अभियान अन्य मिशन सोसाइटियों के क्षेत्रों में भी फैल गया। 1931 के जनगणना के अनुसार पंजाब में 3,95,629 मसीही थे। उनमें से अधिकांश चूड़ा थे। पंजाब के कुल चूड़ाओं का एक चौथाई मसीही बन चुका था।

डी. छोटे जन अभियान

| | |
|---|---|
| (1) गुजराज | – धेड़ |
| (2) महाराष्ट | – मांग और महार |
| (3) आन्ध्र प्रदेश | – माला |
| (4) तमिल नाडु | – पेरियार |
| (5) केरल | – पेरियार और पुलाया |
| (6) उ.प्र. | – मजहबी सिख |
| (7) म.प्र. एवं बिहार | – चमार |

5. इन जन अभियानों के महत्वपूर्ण गुण :

ए. ये अभियान ग्रामीण थे। 1931 की जनगणना के अनुसार छः में से पांच मसीही ग्रामीण थे। मिशनों के मुख्यालय और उनका ध्यान शहरों में या बड़ी बस्तियों में था किन्तु इन जन अभियानों का आरंभ ग्रामों में था।

बी. ये जन अभियान स्वयं लोगों के द्वारा आरंभ किए गए थे, मिशनरियों के द्वारा नहीं। अधिकांश मिशनरी ऊँची जातियों पर ध्यान केन्द्रित किए थे किन्तु परमेश्वर ने नीचे से ऊपर कार्य किया।

सी. 1920 में नेशनल काउंसिल की सभा के बाद मिशनरियों ने जन अभियानों को प्रतिबंधित कर दिया। कुछ ने विश्वास किया कि कलीसिया में आने वाले अनेक लोग गलत मंशा से आए और यह मसीही विश्वास का अवमूल्यन करने वाला था। सौभाग्य से महान मिशनरी राजनेता जॉन आर. मॉट वहां थे। उनके सुझाव पर वास्काम पिकेट, अकेले व्यक्ति को जन अभियानों के अध्ययन के लिए नियुक्त किया गया था। पिकेट ने निर्णय दिया कि विश्वासियों की आत्मिक उपलब्धियां बिलकुल उनके ही बराबर थीं जिन्होंने विशुद्ध आत्मिक विचार से या स्पष्टतः मिश्र मंशा से मसीही विश्वास को स्वीकार किया था। उनका निष्कर्ष था कि पासबानी सेवा और शिष्यता नवविश्वासियों की मंशा से अधिक महत्वपूर्ण थे।

# पाठ 27

अध्याय 8 :

ईसवी सन् 1858 से 1947 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन्स (क्रमशः)

ख. उत्तर–पूर्व भारत में मसीहीयत की वृद्धि

1. उत्तर–पूर्व भारत की जनसंख्या की जातीय संरचना अत्यधिक जटिल है। इस क्षेत्र के अधिकांश निवासी मंगोल वंश से है। वे इस क्षेत्र में लगभग तीन से चार हजार वर्षों के दरम्यान आए हैं। उत्तर–पूर्व भारत के लोगों का एक आम आरंभिक मूल या संस्कृति नहीं है।

2. 24 फरवरी 1826 को ब्रिटिश इस्ट इण्डिया कम्पनी और बर्मा साम्राज्य के मध्य हुए यानडाहो संधि के पश्चात् वह सम्पूर्ण क्षेत्र, जो पहले राजनैतिक रूप में बिखरा हुआ था, ब्रिटिश इस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के अधीन लाया गया। इस्ट इण्डिया कम्पनी ने इस क्षेत्र के सब लोगों को भारत के सब लोगों के साथ शामिल कर दिया और उन पर अपने प्रशासन और शक्ति के भारतीय केन्द्रों से शासन किया।

3. पश्चिम और दक्षिण से हिन्दु अप्रवासी यहां लाए गए।

4. जब ब्रिटिश शासकों ने बंगाली भाषा को स्कूलों और अदालतों की भाषा के रूप में प्रस्तुत किया तब बैप्टिस्ट मिशनरियों ने स्थानीय असमिया भाषा को असम के मैदानी इलाके के लिए महत्वपूर्ण होने पर जोर दिया। मैदान के असमियों ने मसीहीयत को स्वीकार नहीं किया किन्तु पहाड़ियों में जनजातीय ने महसूस किया कि नए ब्रिटिश शासन के कारण उनकी जीवन शैली पर खतरा मंडरा रहा था। उन पर "मानव–भक्षण" और कबीलीयाई युद्धों को रोकने का दबाव पड़ रहा था।

5. मिशनरी कार्य : सिरामपुर के बैपटिस्टों के द्वारा उत्तर पूर्व भारत में मिशनरी कार्य को आरंभ किया गया था।

6. 1813 के आरंभिक समय में ही विलियम कैरी को खासी लोगों के मध्य कार्य करने के लिए एक मिशनरी भेजने हेतु पत्र मिला। अतः उसने उसी वर्ष सिरामपुर के प्रथम नवविश्वासी कृष्ण चन्द्र पॉल को कार्य करने हेतु चेरापूंजी भेजा। पॉल ने सात व्यक्तियों को बपतिस्मा दिया (चार सिपाही, दो खासी और एक असमिया)। पहले तो सिरामपुर ने खासियों के मध्य कृष्ण पॉल के कार्य की सहायता नहीं की। आखीरकार बाइबल का खासी भाषा मे अनुवाद किया गया किन्तु वह अपर्याप्त पाया गया और वेल्श प्रेसबिटेरियन मिशनरियों के द्वारा नया अनुवाद किया गया। 1819 में असमिया नया नियम का और 1833 में सम्पूर्ण बाइबल का प्रकाशन हुआ। चूंकि पूर्व का अनुवाद असमिया लोगों के लिए अस्पष्ट था, अमेरिकन बैप्टिस्ट मिशनरियों को एक नया अनुवाद करना पड़ा। 1827 में सिरामपुर ने मणिपुरी भाषा में नया नियम का प्रकाशन किया यद्यपि मणिपुर में तब तक कोई भी मिशनरी कार्य नहीं था। सिरामपुर मिशन ने 1829 में असम की तराई के गुवाहाटी में एक स्कूल आरंभ किया और रेव्ह. जेम्स रे को उस स्कूल के संचालन हेतु भेजा। गुवाहाटी में स्कूल संचालन के साथ रे ने निचले असम में बंगालियों और असमियों को सुसमाचार सुनाते हुये और ट्रैक्ट बांटते हुये बहुत यात्राएं कीं। जब रे की पत्नी का देहान्त हो गया तब वह अत्यधिक निराश हो गए और स्कूल बन्द कर दिए। सिरामपुर मिशन ने 18 वर्ष के एक जवान अलेक्ज़ेंडर बी.लीश को चेरापूंजी में एक स्कूल आरंभ करने हेतु भेजा ताकि वे खासी लोगों के मध्य अपने पूर्व के कार्य को पुनर्जीवित कर सकें। छः वर्षों की मेहनत के बावजूद लीश खासी मसीही समाज की स्थापना करने में असमर्थ रहा।

7. 1836 में अमेरिकन बैपटिस्ट मिशनरी यूनियन ने असम के कमीशनर के निमंत्रण पर सादिया (अपर असम) में अपने प्रथम मिशनरी भेजे। सादिया में मिशनरी भेजने का तात्पर्य वहां के लोगों को सुसमाचार पहुंचाना नहीं था किन्तु वह उत्तरी बर्मा और दक्षिण चीन के शान जनजातियों तक पहुंचने का जरिया था। चीनी सरकार और बर्मा के राजाओं के विरोध के कारण इन क्षेत्रों में सेवा में प्रगति नहीं हुई। अंश अंश करके मिशनरी ब्रह्मपुत्र घाटी के असमिया लोगों पर अपना ध्यान केन्द्रित करने लगे। 1843 में उन्होंने अपर, मध्य, और लोअर असम में अपना कार्य

स्थापित कर लिया।

8. 1841 में अमेरीकी बैपटिस्टों और वेल्श प्रेसबिटेरियनों ने चेरापूंजी में उस कार्य को हाथ में ले लिया जहां से सिरामपुर मिशन ने त्यागा था। विरोध के बावजूद वेल्श मिशन ने धीरे धीरे पहाड़ों के अन्य क्षेत्रों में अपने कार्य का विस्तार किया। 1853 में शेल्ला में एक कलीसिया की स्थापना हुई। खासियों के लिए स्कूलों की स्थापनाएं की गईं। वेल्श मिशन ने कलीसियाओं के प्रबंधन के लिए स्थानीय अगुवों को प्रशासक के रूप में तैयार किए। बड़े शैक्षणिक तंत्र और विशाल कलीसियाई ढांचे के कारण वेल्श प्रेसबिटेरियन मिशन खासियों और जयंतियाओं के सिनटेंग्स के मध्य तीव्र वृद्धि देख रहे थे।

9. प्रथम 40 वर्षों में वेल्श प्रेसबिटेरियन मिशन ने अत्याधिक विरोध का सामना किया। 1875 में 514 खासी मसीही थे किन्तु सिर्फ 25 वर्षों पश्चात 1900 में 15,885 मसीही थे।

# पाठ 28

अध्याय 8 :

ईसवी सन् 1858 से 1947 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन्स (क्रमशः)

10. 1900 तक अमेरिकन बैप्टिस्ट मिशन के 18,000 मसीही थे जो ब्रह्मपुत्र घाटी, गारो पहाड़ियों (मेघालय) और नगालैण्ड के छोटे से हिस्से में फैले हुए थे।

11. यह जानना रोचक है कि गारो लोगों के मध्य कार्य का आरंभ मिशनरियों के द्वारा नहीं किन्तु ओमेद और रामखे नामक वाट्रेपारा गांव के दो विद्यार्थियों के द्वारा हुआ था जिनका सम्पर्क मैदानी इलाके में मसीहियों से हुआ था। वे अपने लोगों के लिए मसीही मूल्यों के महत्व के बारे में दृढ़ विश्वासी थे और 1864 में उनके मध्य मिशनरी कार्य आरंभ किए। दोनों अपने गृहग्राम से खदेड़ दिए गए। रामखे ने डामरा में एक स्कूल आरंभ किया और ओमेद ने राजासिमला में प्रथम मसीही ग्राम स्थापित किया। 1867 में 36 लोग बपतिस्मा के लिए तैयार थे। 15 अप्रेल के दिन राजासिमला के मसीहियों को कलीसिया में संगठित किया गया और ओमेद का उनके पासबान के रूप में अभिषेक किया गया। वह उत्तर–पूर्वी भारत से अभिषेक किया जाने वाला प्रथम व्यक्ति बन गया। एक ही वर्ष के भीतर पूर्ण सदस्यों की संख्या बढ़कर 150 हो गई और सात वर्षों में 400 हो गई।

12. 1841 से अमेरिकन बैपटिस्ट मिशनरियों का नगाओं से सम्पर्क था। असली शुरूआत तब हुई जब असमिया सुसमाचार प्रचारक गोधुला बाबू 1871 में आओ पहाड़ियों के दौरे पर गए। अगले वर्ष नौ युवकों का बपतिस्मा हुआ। आस पास के गावों में अनेक कलीसियाएं स्थापित की गईं।

13. 1880 में अंगामी क्षेत्र के कोहिमा में दूसरा नगा केन्द्र आरंभ किया गया। 1885 में वोखा में लोथा नगाओं के बीच तीसरा केन्द्र स्थापित किया गया।

14. एंग्लीकन (चर्च ऑफ इंग्लैण्ड) के चैपलियनों ने चाय बागान के कामगारों के मध्य सेवा आरंभ की। 1870 के दशक में बंगाल का लूथरन संथाल मिशन चाय बगान कार्य पर आधारित स्वपोषित कार्य शैली के कारण अत्यधिक सफल रहा। छोटा नागपूर का गॉसनर इवेंजलिकल लूथरन चर्च असम में चाय बगान मजदूरों के मध्य सेवा देता था। रोमन कैथोलिक चर्च ने भी अपना मिशनरी कार्य आरंभ किया।

15. मणिपुर में मिशन कार्य का आरंभ अबओरिजंस मिशन के विलियम पेट्रिग्यू के आगमन के साथ हुआ। उसने 1894 में इम्फाल में एक स्कूल आरंभ किया। रूढ़िवादी मणिपुरी हिन्दुओं के द्वारा कार्य में बाधा डालने के कारण वे स्कूल नहीं चला सके। इसके पूर्व कि पेट्रिग्यु अंततः उखरूल में बसें, उन्होंने अबओरिजंस मिशन से त्यागपत्र दे दिया और अमेरिकन बैपटिस्ट मिशन से जुड़ गए। फरवरी 1896 में अबओरिजंस मिशन ने मणिपुर मिशन क्षेत्र को अमेरिकन बैपटिस्टों को हस्तांतरित कर दिया। पेट्रिग्यु ने एक स्कूल आरंभ किया और 1901 में नागा और कुकियों को मिलाकर बारह विद्यार्थियों का बपतिस्मा किया।

16. पेट्रिग्यु अकेले मिशनरी थे जिन्हें मणिपुर में बसने की अनुमति थी। उन्होंने सरकार के साथ एक अनोखा सम्बंध बना रखा था और वे पूरे राज्य के लिए ऑनररी इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल का कार्य करते थे। उनका सुसमाचारीय कार्य मणिपुर की पहाड़ियों तक सीमित था। सरकार पेट्रिग्यु के कार्य के लिए अत्यंत आभारी थी, विशेषकर श्रमिक बल पैदा करने के लिए। एक दूसरे परिवार को प्रवेश की अनुमति मिली। मणिपुर सरकार के द्वारा जिस एकमात्र अन्य मिशन को अनुमति मिली वह थी इंडो–बर्मीस थाडो कुकी, एक वेल्श प्रेसबिटेरियन मिशनरी वाटकिन रॉबर्ट्स के द्वारा स्थापित किया गया पायोनियर मिशन। वह छोटे क्षेत्र में कार्य करता था। यद्यपि मिशन कार्य पर अनेक प्रतिबंध लगाए गए तौभी कलीसिया की वृद्धि अद्भुत थी। मणिपुर में मसीहीयत की तीव्र वृद्धि उस क्षेत्र के लोगों के द्वारा हुई, न कि विदेशी मिशनरियों के द्वारा।

17. 20वीं सदी के आरंभ में मिजोरम में मसीहीयत में तीव्र वृद्धि हुई। आदिवासी मसीहियों के मध्य जागृति के चलन

का परिणाम सुसमाचारीय क्रियाकलापों में तीव्रता आना था। प्रथम मिजो जागृति 1906 में आइजॉल में आई। जागृतियां स्वदेशीकरण का कारण बन गईं। सताव में भी तीव्रता आ गई। मिजोरम में मसीहियों की संख्या 1911 में 2,461 से बढ़कर 1931 में 59,123 हो गई। 1951 आते तक उनकी संख्या 1,77,575 हो गई। अगले बीस वर्षों के दरम्यान लगभग समस्त मिजो मसीही बन चुके थे। उनके सुसमाचारीय प्रयास पड़ोसी त्रिपुरा और मणिपुर के साथ सुदूर ब्रह्मपुत्र घाटी तक लक्षित थे।

# पाठ 29

अध्याय 8 :

ईसवी सन् 1858 से 1947 तक भारत में प्रोटेस्टेंट मिशन्स (क्रमशः)

ग उत्तर–पूर्वी भारत में मसीहीयत के तीव्र वृद्धि के कारण

1. सुसमाचार ने लोगों का जीवन परिवर्तित किया। मसीहियों ने जनजातियों के मध्य युद्धों को समाप्त करा दिया और इससे भाईचारा और मित्रता बढ़ गई। उन्होंने गुलाम बनाना, अफीम और नरसंहार का त्याग किया।

2. सुदूर पहाड़ी इलाकों में मिशनरियों की समर्पित सेवा ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। नरमुंड संहारक जनजातियों क मध्य उनके साहसी प्रयास की सराहना जवाहरलाल नेहरू जैसे राष्ट्रीय नेताओं के द्वारा भी की गई।

3. मिशन के द्वारा वेतन पाने वाले सुसमाचार प्रचारकों की अपेक्षा ले–मेन और ले–विमेन (साधारण विश्वासीगण) अद्‌भुत वृद्धि लाए, उदाहरण मणिपुर।

4. उत्तर–पूर्व में जनजातियों तक पहुंचने के लिए अनेक स्वदेशी ढ़ांचे तैयार किए गए।

5. स्थानीय स्वदेशी शैली में कलीसिया भवन बनाए गए। 1950 में काउंसिल ऑफ बैपटिस्ट चर्चेस ऑफ नार्थ ईस्ट इण्डिया ने मिशन का कार्य अपने हाथों में ले लिया। कलीसिया भवन पूरी रीति से स्वदेशी बनाए गए। लगभग सभी कलीसियाएं आरंभ ही से स्वपोषित बन गईं।

6. मसीहीयत एक प्रमुख जनजाति में विकसित हुई, इसके पहले कि अन्य जनजातियों में फैले। उदाहरण के लिए नगालैण्ड में सुसमाचार 1880 में सर्वप्रथम आओ जनजाति में फैला, उसके बाद 1920 में सेमा में, उसके बाद 1930 में लोथा जनजाति में, उसके बाद 1930 के दशक के अंतिम भाग में अंगामी जनजाति में और फिर स्वतंत्रता के पश्चात् कोन्यक जनजाति में फैला।

7. चिकित्सकीय सुविधाएं प्रदान करना कलीसिया की वृद्धि में सहायक रहा। मिशन स्कूल और छात्रावास सुसमाचार प्रचार के लिए महत्वपूर्ण आधार बने। चिकित्सा, अनाथों की देखभाल, राहत कार्य और ग्राम विकास के क्षेत्रों में मानवतावादी जैसे उपरोक्त कार्य किए गए। मिजोरम में 1911 –1912 में किए गए अकाल राहत कार्य के पश्चात् लोगों के मसीहीयत में आने की बाढ़ आ गई।

8. प्राथमिक शिक्षा पर अत्यधिक जोर दिया गया। लगभग सभी मिशनों ने यह आवश्यक समझा कि उनके कार्य के आरंभ ही में स्कूल आरंभ किए जाएं। पहला स्कूल 1829 में सिरामपुर मिशन के द्वारा खोला गया था। बैपटिस्टों ने सादिया में 1835 में स्कूल खोला। स्कूल के शिक्षक सुसमाचार प्रचार का कार्य करते थे। शिक्षा देना मिशन का उत्तरदायित्व बन गया। जनजातियों और भाषाओं की अनेकता ने सरकार या मिशनों के लिए उच्च शिक्षा के अनेक संस्थान बनाना कठिन बना दिया।

9. साहित्य ने कलीसिया की वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा किया। अमेरिकन बैपटिस्ट मिशन ने असम में असमिया भाषा को संरक्षित और जागृत किया। पहाड़ों में मिशनरी ही जनजातीय भाषा को लिपिबद्ध करने वाले प्रथम लोग थे और उन्होंने उन भाषाओं में साहित्य प्रकाशित किया। असमिया बैपटिस्ट मिशनरियों ने अपने स्वयं के स्कूलों में भी असमिया भाषा को ही शिक्षा का माध्यम बनाया (उदा. खासी, गारो)।

10. मसीहीयत ने पुराने, त्याग दिए गए परम्पराओं के ऐवज़ में काम में आने वाली बात उपलब्ध करायी। यीशु ख्रीष्ट की सामर्थ, दुष्ट की सामर्थ से अधिक सामर्थी देखी गई। अविवाहितों के शयनागारों के स्थान पर मसीही छात्रावास आरंभ किये गये और पुण्य के पर्व के भोज का स्थान बड़े दिन के भोज ने ले लिया।

# पाठ 30

## अध्याय 9 :

## ईसवी सन् 1947 से भारत में मसीहीयत

क. राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और भारत में मसीहीयत पर उसके प्रभाव

1. 1947 में ग्रेट ब्रिटेन से स्वतन्त्रता प्राप्त करना पूरे देश के साथ साथ मसीहियों के लिए भी कठिन और कष्टपूर्ण कार्य था।

2. पश्चिमी देशों से आए मिशनरी धीरे धीरे अपने देशों में लौट गए। स्वतन्त्रता के दस वर्षों के भीतर बहुत ही कम विदेशी मिशनरी भारत में रह गए।

3. भारतीय कलीसिया के सामने उसके भूतपूर्व पश्चिमी प्रभावों के नियंत्रित करने वाले हाथों के बिना अपने पैरों पर खड़े होने की चुनौती – और अद्‌भुत अवसर – था।

4. काफी अचानक ही बड़े डिनामिनेशन और बाइबल सोसाइटी और वाय.एम.सी.ए. जैसी बड़ी सेवकाइयां भारतीय राष्ट्रीय अगुवों के हाथों में सौंप दी गईं।

5. बढ़ती पीड़ा के साथ कुछ कठिन वर्ष भी रहे किन्तु कलीसिया इस दरम्यान भी यद्यपि अपनी आराधना शैली में पूर्ण रीति से न सही परंतु अपने संगठनात्मक ढांचे में सचमुच स्वदेशी बनते हुए फलती–फूलती रही।

ख. वर्तमान भारत में कलीसिया की सांख्यिकी

आज के भारत में मसीहियों के चार प्रमुख समूह पाए जाते हैं। चारों समूह और उससे संबंद्ध रखने वालों की लगभग संख्या नीचे दी जा रही है *

1. प्रोटेस्टेंट – 2,60,00,000
2. कैथोलिक – 1,88,00,000 (इसमें रोमन और सीरियां–मलाबार कैथोलिक कलीसियाओं की संख्या भी है)
3. स्वतन्त्र – 1,75,00,000
4. ऑर्थोडॉक्स – 24,00,000

बड़ी प्रोटेस्टेंट कलीसियाएं निम्नलिखित हैं :

| | |
|---|---|
| 1. चर्च ऑफ साउथ इंडिया | – 43,80,000 |
| 2. सेवेन्थ डे एडवेंटिस्ट | – 27,48,000 |
| 3. यूनाइटेड इवेंजेलिकल लूथरन चर्च | – 19,50,000 |
| 4. बिलिवर्स चर्च | – 18,00,000 |
| 5. चर्च ऑफ नार्थ इण्डिया | – 15,00,000 |
| 6. प्रेसबिटेरियन चर्च ऑफ इण्डिया | – 13,95,000 |
| 7. मेथोडिस्ट चर्च इन इण्डिया | – 11,50,000 |
| 8. मार थोमा सीरियन चर्च | – 10,46,000 |
| 9. समावेशम ऑफ तेलगु | – 9,00,000 |
| 10. असेम्बलीस ऑफ गॉड | – 8,35,000 |

11. ओडिशा बैपटिस्ट इवेंजलिकल चर्चेस — 7,45,000

ग. मसीही कहां पाए जा सकते हैं :

भारत के तीन राज्यों में मसीहियों का बहुमत है : मिजोरम, नगालैण्ड और मेघालय।

चार राज्यों और दो केन्द्र शासित प्रदेशों में मसीहियों की जनसंख्या 10 से 50 प्रतिशत के मध्य है :

1. मणिपुर 34 प्रतिशत
2. केरल 19 प्रतिशत
3. अरूणाचल प्रदेश 19 प्रतिशत
4. तमिलनाडु 10 प्रतिशत
5. गोआ और पुद्दुचेरी कैथोलिक देशों के द्वारा उपनिवेश बनाए गए थे और एक मजबूब मसीही प्रभाव रखते हैं (कम से कम सांस्कृतिक रीति से)।

बहुतेरे कुछ राज्य ऐसे भी हैं जहां मसीही जनसंख्या 2 प्रतिशत से भी कम है : बिहार, दिल्ली, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, और पश्चिम बंगाल।

---

उपरोक्त सूचना ऑपरेशन वर्ल्ड 2010 से ली गई हैं (कुछ आंकड़े नज़दीकी हजार में बदले गए हैं)।

* संबद्ध उन सब को सम्मिलित करता है जो एक समूह विशेष के साथ पहचान स्वीकार करते हैं, जिसमें पंजीकृत और अन्य दोनों प्रकार के सदस्य आते हैं जो आराधना में आते तो हैं किन्तु अधिकृत रूप से पंजीकृत न हों।

# पाठ 31

अध्याय 9 :

ईसवी सन् 1947 से भारत में मसीहीयत (क्रमशः)

घ. वर्तमान भारत में कलीसिया के कार्य

पिछले अध्याय में हम ने वर्तमान समय की मसीहीयत की ताकत और प्रकृति का वर्णन किया है। इस अध्याय में हम परमेश्वर के राज्य के लिए और महान आदेश को पूरा करने के लिए मसीही क्या कर रहे हैं इस पर एक अवलोकन प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

1. आज भारत में बढ़ती हुई मिशनरी गतिविधियां हैं :

   ए. *ऑपरेशन वर्ल्ड (2010)* के अनुसार 1000 से अधिक भारतीय मिशन एजेंसियां और कलीसिया आधारित पहल ने 1,00,000 से अधिक कलीसिया स्थापक, सुसमाचार प्रचारक और समाजिक कार्यकर्ता भेजे हैं – जिनमें से अनेक ऐसे हैं जो एक से दूसरी संस्कृति में गये हैं – और मसीह के लाखों अनुयाइयों की मण्डलियां स्थापित किए हैं। 1964 में सिर्फ चार स्वदेशी भारतीय मिशन एजेंसियां थीं।

      – इंडिया मिशन्स् असोसिएशन (आई.एम.ए.) का गठन 1977 में हुआ था। 2012 में उनके पास 243 मिशन एजेंसियों की सदस्यता थी, जिनमें भारत और विदेश में कार्य करने वाले मसीही कार्यकर्ताओं की संख्या 60,000 से अधिक थी।

      – ऑपरेशन मोबिलाइजेशन (इण्डिया) भारत के अनेक मिशनों में से एक है। उसके प्रशिक्षित 40,000 से अधिक स्नातक भारत में पूर्णकालिक सेवा में हैं।

      – अन्य मजबूत मिशन संगठनों में गॉस्पल फॉर एशिया, मिशन इण्डिया, और महाराष्ट्र विलेज मिनिस्ट्रीज हैं।

   बी. दक्षिण भारत में एक मजबूत मिशनरी मूवमेंट है। दक्षिण भारत से हजारों की संख्या में मिशनरी विशेषकर उत्तर भारत जा रहे हैं।

      – फ्रेंड्स मिशनरी प्रेयर बैण्ड दक्षिण भारतीय मिशन का एक उदाहरण है। इसका आरंभ तमिलनाडु में एक प्रार्थना मूवमेंट के रूप में हुआ। इसने 1967 में अपना प्रथम मिशनरी नियुक्त किया और 1971 में उत्तर प्रदेश में अपना कार्य स्थापित करते हुए उत्तर भारत में अपना पहला मिशनरी भेजा।

   सी. उत्तरपूर्वी भारत से भी अनेक मिशनरी आए हुए हैं।

      – मिजोरम से 2300 मिशनरी गये हैं, उनमें से अधिकांश उत्तर भारत में कार्यरत हैं परन्तु अन्य नेपाल, म्यानमार, और अन्य स्थानों पर नियुक्त हैं।

      – "उलटा मिशन" (रिवर्स मिशन) के रूप में मिजोरम की कलीसियाओं ने वेल्श में मिशनरी भेजे हैं, जहां के मिशनरियों ने 19वीं शताब्दी में उन्हें सुसमाचार सुनाया था।

      – हजारों नगाओं ने भारत के अनेक स्थानों में और बाहर भी जाकर प्रभु की सेवाएं की हैं। नगालैण्ड बैपटिस्ट चर्च काउंसिल के मिशनरी विभाग के नगालैण्ड मिशनरी मूवमेंट ने नगालैण्ड के बाहर 10,000 से अधिक मिशनरी भेजने का लक्ष्य रखा है।

2. इण्डिया मिशन सुसमाचार प्रचार और कलीसिया–स्थापना के साथ समग्र सेवाओं पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं :

   ए. भारत में कैथोलिकों द्वारा संचालित 5000 से अधिक स्वास्थ्य सेवाएं हैं, जो भारत के 20 प्रतिशत से अधि

ाक होता है।

बी. इसी के साथ अनेक प्रोटेस्टेंट स्वास्थ्य एजेंसियां भी हैं जिनमें भारत के कुछ चुने हुए श्रेष्ठ अस्पताल और मेडिकल प्रशिक्षण केन्द्र भी हैं।

सी. मसीही उच्च और उच्चतर माध्यमिक विद्यालय और विश्वविद्यालय देश के अग्रणी शिक्षण संस्थानों में आते हैं।

डी. मसीही सेवा संगठन भारत में हजारों अनाथालय संचालित करते हैं।

ई. वाय.एम.सी.ए. और वाय.डब्ल्यू.सी.ए. मसीह के नाम में, विशेषकर भारत के युवाओं को, अनेक समाजिक सेवाएं प्रदान करते हैं।

एफ. अनेक मसीही सेवाएं भारत में वंचित लोगों को व्यवसायिक–कला प्रशिक्षण प्रदान करती हैं जैसे कि सिलाई–कढ़ाई। और अनेक मसीही सेवाएं हैं जो जरूरतमंदों को लघु–ऋण देती हैं।

3. एईडा अर्थात् ए.आई.डी.ए. (एसोसिएशन फॉर इन्टरनेशनल डिसायपलशिप एडवान्समेन्ट) महान आदेश को पूर्ण करने के लिए भारत में कलीसिया को तैयार करने पर ध्यान केन्द्रित करता है।

ए. प्रशिक्षण कार्यक्रम : एईडा (ए.आय.डी.ए) के पास भारत में नौ महीने चलने वाले सुसमाचार स्कूलों का नेटवर्क है और इसके साथ प्रतिवर्ष द्विमासिक पोर्टेबल बाइबल स्कूल भी चलाए जाते हैं।

बी. शिष्यता कार्यक्रम : एईडा युवाओं के लिये जी.सी.3 (ग्रेट कमीशन चैलेन्ज कैम्प्स्) अभियान और महिलाओं के लिए प्रतिवर्ष अनेक वीमेन्स वर्क कॉन्फ्रेंस संचालित करती है।

सी. एईडा प्रत्येक तिमाही में 1,000 से अधिक डिनामिनेशनल अगुवों को एईडा न्यूज़लेटर भेजने के द्वारा महान आदेश सेवा के प्रति उत्साहवर्धन और स्रोत उपलब्ध कराती है।

# पाठ 32

अध्याय 9 :

ईसवी सन् 1947 से भारत में मसीहीयत (क्रमशः)

च. आज कलीसिया वृद्धि के कारण :

1. भारत में कलीसिया की वृद्धि अनेक प्रार्थना अभियानों के कारण हो रही है।

   ए. प्रार्थना अभियान भारत के सब प्रातों में प्रभावशाली तरीके से अपना कार्य कर रहे हैं। इस देश में उद्धार भेजने हेतु कलीसियाएं मिल जुलकर परमेश्वर को पुकार रही हैं।

   बी. गुणित होने की आज्ञा और "एक हजार हो जाएगा" (यशा. 60:22) के आदेशानुसार प्रार्थना हो रही है।

   सी. प्रार्थना में इस आशा के साथ विजय की घोषणा की जा रही है कि परमेश्वर ने उन क्षेत्रों को दे दिया है जहां सुसमाचार सुनाया गया है।

   डी. बच्चों, युवाओं, और महिलाओं के लिए, कि उनके जीवनों में परमेश्वर से आत्मिक मुलाकात और विजय प्राप्त होवे इस पर ध्यान केंद्रित करते हुये, प्रार्थनाए की जा रही हैं।

   ई. परमेश्वर के सम्मुख प्रभावशाली चर्च स्थापना, शिष्यता, स्थानीय अगुवों को तैयार करना, और विश्वास बढ़ाने वाले अन्य लक्ष्यों के लिए ध्यान केन्द्रित करते हुये प्रार्थनाएं की जा रहीं हैं।

   एफ. जो शिष्य बनाए गए हैं, बपतिस्मा लिए हैं, तैयार किए गए और भेजे गए हैं उनके लिये, और जिन जाति समूहों में सुसमाचार के साथ पहुंचा गया है उनके लिये, धन्यवाद की प्रार्थनाएं परमेश्वर को अर्पित की जा रही हैं।

2. प्रशिक्षण

   ए. कलीसिया का जीवन और स्वास्थ्य विश्वासियों, पासबानों, शिक्षकों, सुसमाचार प्रचारकों और मिशनरियों के उचित विकास पर निर्भर करता है।

   बी. प्रत्येक दस वर्ष में बाइबल स्कूलों की संख्या दुगनी हो रही है। नए विश्वासी प्रशिक्षण के लिए बड़ी संख्या में आ रहे हैं और सेवा के लिए व्यवहारिक दक्षता प्रदान की जा रही है।

   सी. यूथ कैम्पस, स्टूडेंट समर प्रोजेक्टस, चलित बाइबल स्कूल, प्रोफेशनल कैम्पस ले–लीडर्स को लीडर्स में बदलने में सहायक हो रहे हैं।

   डी. स्नातक स्तरीय सेमनरियों की संख्या 100 से अधिक है। सुप्रशिक्षित और प्रभावशाली सेवा के बोझ से भरे और आत्मिक लगन से भरपूर सेवकों के दल कटनी काटने वालों के रूप में भेजे जा रहे हैं।

3. प्रभावशाली नेतृत्व। हजारों आम विश्वासियों के द्वारा परमेश्वर के राज्य के प्रति जिम्मेदारी लेने के कारण कलीसिया के नेतृत्व में क्रमिक परिवर्तन आ रहा है।

   ए. मसीह का प्रत्येक अनुचर ईश्वरीय बुलाहट प्राप्त है – स्वर्ग से नियुक्ति है, उनके जीवनों के लिए परमेश्वर की महान रूपरेखा का एक भाग है।

   बी. यीशु मसीह के बदन और लहू में सिद्ध नेतृत्व का जन्म हुआ था। मसीह के समरूप अगुवा बनने के लिए विश्वासी पवित्र आत्मा के द्वारा तैयार किए जाते हैं।

   सी. अगुवे बन रहे हैं : शिक्षक, संवाद प्रेषक, प्रोत्साहक, विनम्र सेवक और दर्शन देखनेवाले तैयार हो रहे हैं।

डी. अगुवे यूह. 4:34–36; कुलु. 4:5 और 1 थिस्स.1:4–8 का दर्शन बांट रहे हैं।

ई. अगुवे सफलता और अवसरों के लिए प्रार्थना कर रहे हैं (नहेम्याह 1:11) और अंतिम लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं (1 कुरं. 9:19)।

एफ. अगुवे सत्य बोल रहे हैं (इफि. 4:15); वे उस चरित्र और व्यवहार का नमूना प्रस्तुत कर रहे हैं जिसकी शिक्षा वे दे रहे हैं, और आशा करते हैं, और वे प्रत्येक के प्रति आदर प्रगट कर रहे हैं।

जी. अगुवे दूसरों की सेवा कर रहे हैं स्वयं की नहीं (फिलि. 2:3–4); उन्होंने यह महसूस किया है कि यह 'परमेश्वर" के बारे में है "मेरे" बारे नहीं (मीका 6:8); वे परमेश्वर के नम्रता के नमूने को दिखाते हैं (मर. 9:35)।

एच. अगुवे दूसरों को कैसे सेवा करना है सिखा रहे हैं। वे सहयोग और बल प्रदान करते हैं (1 कुरिं. 10:24); वे मसीह को कलीसिया का सिर और सहायक का सम्मान देते हुए मसीह का मन रखते हैं (1 कुरिं. 11:3; तीतुस 2:3, 5)।

आई. अगुवे दूसरों को बना रहे हैं (1 थिस्स. 5:11; प्रेरित 11:22–24)। वे इन सब बातों के लिए परमेश्वर को महिमा देते हैं (इफि. 3:20–21)। वे नियमित उत्साहवर्धन करने के द्वारा दूसरों को प्रेरणा दे रहे हैं।

# पाठ 33

अध्याय 9 :

ईसवी सन् 1947 से भारत में मसीहीयत (क्रमशः)

## छ. पांच डिनामिनेशनल समूहों के रेखा–चित्र (प्रोफाइल्स)

मसीही भारत भर में और जीवन के हर एक क्षेत्र में पाए जाते हैं; वे दक्षिण भारत, कोकण समुद्र तट और उत्तर पूर्व भारत में बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। भारतीय मसीहियों ने राष्ट्रीय जीवन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और उसके विभिन्न क्षेत्रों में अच्छी संख्या में पाए जाते हैं। आगे दिए जा रहे पांच पाठ, भारत के बड़े प्रोटैस्टेंट समूहों की रूप–रेखाओं को प्रस्तुत करते हैं।

1. चर्च ऑफ नॉर्थ इण्डिया (सी.एन.आई.)

सी.एन.आई. उत्तर भारत का प्रमुख प्रोटेस्टेंट डिनामिनेशन है जिसका गठन 29 नवम्बर 1970 को इस क्षेत्र के इन प्रोटेस्टेंट कलीसियओं के मिलन/यूनियन से हुआ है : चर्च ऑफ इण्डिया, पाकिस्तान, बर्मा और सिलोन (एंग्लीकन), यूनाइटेड चर्च ऑफ नॉर्थ इण्डिया (कांग्रिगेशनवादी और प्रेसबिटेरियन), बैपटिस्ट चर्चेस ऑफ नॉर्थ इण्डिया (ब्रिटिश बैपटिस्ट), चर्च ऑफ द ब्रेदरेन इन इण्डिया (जो 2006 में वापस निकल गए), मेथोडिस्ट चर्च (ब्रिटिश और ऑस्ट्रेलिया कॉन्फ्रेन्सेस) और डिसाइपल्स ऑफ ख्राईस्ट। सी.एन.आई की कलीसियाएं भारत के चार राज्यों (आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु) को छोड़कर पूरे भारत में पाई जाती हैं और उसकी 3000 कलीसियाओं में लगभग 12,50,000 सदस्य हैं।

आराधना की लिखित विधियां/लिटर्जी : सी.एन.आई. की आराधना–विधि अनेक परम्पराओं को समावेषित किए हुए है जिनमें मेथोडिस्ट और बहुत छोटी कलीसियाएं, जैसे चर्च ऑफ द ब्रेदरेन और डिसाइपल्स ऑफ ख्राईस्ट की विधियां भी हैं। विविध लिखित आराधना विधियों के लिए स्थान बनाया गया है।

प्रशासन : सी.एन.आई. की राज्यव्यवस्था इस यूनियन में साथ आए समूहों के इपीस्कोपैसी, प्रेसबिटरी और लेयटी के राजव्यवस्थाओं को प्रतिबिम्बित करने का प्रयास करती है। सी.एन.आई का धर्माध्यक्ष–प्रक्षेत्र (इपीस्कोपैसी) एतिहासिक और संवैधानिक दोनों है। इसमें 26 डायोसिस हैं और प्रत्येक एक एक बिशप के अधीन है। सिनड प्रमुख प्रशासनिक और विधान बनाने वाला खण्ड है, जो पीठासीन बिशप, जिसे मॉडरेटर कहते हैं, और कार्यकारिणी समिति का चुनाव करने के लिए तीन वर्ष में एक बार मिलता है। मॉडरेटर चर्च के प्रधान के रूप में कार्य करते हैं।

सामाजिक सरोकार/सहभागिता : विभिन्न सेवाओं के लिए प्रभारी सिनड बोर्ड्स बनाए गए हैं : माध्यमिक, उच्चतर, तकनीकी और थियालॉजिकल शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं {1} सोशल सर्विस {2} ग्रामीण विकास, साहित्य और मीडिया। सिनड का एक प्रोग्राम कार्यालय भी है {3} जो शांति, न्याय, सामंजस्य और जीवन के सम्मान की रक्षा और उसे बढ़ावा देने का प्रयास करता है।

सी.एन.आई. वर्तमान में 65 अस्पताल, नौ नर्सिंग प्रशिक्षण स्कूल, 250 शिक्षण संस्थान और तीन तकनीकी प्रशिक्षण स्कूल का संचालन करता है। भारत के कुछ प्राचीनतम् और सम्मानित शिक्षण संस्थाएं सी.एन. आई. से सम्बद्ध हैं अथवा उसके द्वारा प्रशासित हैं जैसे, कलकत्ता में स्कॉटिश चर्च कॉलेज, मुम्बई में विलसन कॉलेज, नागपूर में हिस्लॉप कॉलेज, दार्जिलिंग में सेंट पॉल्स स्कूल, आगरा में सेंट जॉन्स कॉलेज और दिल्ली में सेंट स्टीफन्स कॉलेज।

इक्यूमेनिस़म (एकता–विषयक) : कलीसियाई एकता के प्रति अपने समर्पण को प्रतिबिम्बित करने हेतु सी. एन.आई. अनेक इक्यूमेनिकल समितियों में सहभागी होती है। देशीय स्तर पर वह चर्च ऑफ साउथ इंडिया और मार

थोमा सीरियन चर्च के साथ एक काउंसिल में जुड़ती है जो "कम्यूनियन ऑफ चर्चेस इन इंडिया" के नाम से जाना जाता है। वह नेशनल काउंसिल ऑफ इण्डिया की भी सदस्य है। क्षेत्रीय स्तर पर सी.एन.आई. क्रिश्चियन कॉन्फ्रेस ऑफ एशिया में भी भाग लेती है और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेस और काउंसिल फॉर वर्ल्ड मिशन, वर्ल्ड अलाएंस ऑफ रिफार्म्ड चर्चेस, वर्ल्ड मेथोडिस्ट काउंसिल की भी सदस्य होने के साथ साथ एंग्लीकन कम्यूनियन में पूर्ण सहभागी है। सी.एन.आई. अन्य अनेक देशीय, क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मसीही एजेंसियों के साथ पार्टनरशिप में है।

सी.एन.आई. डायोसिसों की सूचि : आगरा, अमृतसर, अण्डमान और निकोबार, बैरकपूर, भोपाल, चंडीगढ़, कटक, छोटा नागपूर, छत्तीसगढ़, दुर्गापुर, दिल्ली, पूर्वी हिमालय, गुजरात, जबलपुर, कोलकाता, कोल्हापुर, लखनऊ, मुम्बई, मराठवाड़ा, नागपुर, नासिक, उत्तरपूर्वी भारत, पटना, फुलबनी, पुणें, राजस्थान, सम्बलपुर।

(यह पाठ मध्य प्रदेश स्कूल ऑफ इवेंजलिजम के रेव्ह. सैमुएल फ्रांसिस के द्वारा लिखा गया था।)

# पाठ 34

अध्याय 9 :

ईसवी सन् 1947 से भारत में मसीहीयत (क्रमशः)

## 2. चर्च ऑफ साउथ इण्डिया (सी.एस.आई.)

ए. चर्च ऑफ साउथ इण्डिया का गठन यूनियन ऑफ साउथ इण्डिया यूनाईटेड चर्च (जो स्वयं में कांग्रीगेशनल, प्रेसबिटेरियन और रिफॉर्म्ड परम्परा का यूनियन था), दक्षिण एशिया में एंग्लीकन चर्च और दक्षिण भारत का मेथोडिस्ट चर्च के मिलने से बना था।

बी. यह एंग्लीकन कम्यूनियन, वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेस, वर्ल्ड अलाएंस ऑफ रिफॉर्म्ड चर्चेस,, क्रिश्चियन कॉन्फ्रेंस ऑफ एशिया, भारत में चर्चेस की सहभागिता, और नेशनल काउंसिल ऑफ चर्चेस इन इण्डिया का साहचर्य/असोसिएशन है।

सी. सी.एस.आई. के भौगोलिक सीमा क्षेत्र में कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तेलंगाना, तमिलनाडु, केरल और श्री लंका आते हैं।

डी. इसका गठन ग्रेट ब्रिटेन से स्वतन्त्रता प्राप्ति के एक माह पश्चात् 27 सितंबर 1947 को चेन्नई, तमिलनाडु में हुआ था।

ई. ट्रावनकोर और कोचीन एंग्लीकन डायोसिस के बिशप राइट रेव्ह. सी.के.जेकब इस उदघाटन सभा के पीठासीन बिशप थे।

एफ. सी.एस.आई. मे 15,000 मण्डलियां, 38 लाख सदस्य, 11,214 धर्मसेवक, 104 अस्पताल, 2,300 स्कूल और 150 महाविद्यालय आते हैं।

जी. 1960 के दशक में चर्च ने ग्रामीण विकास प्रोजेक्टस आरंभ किए। अभी 50 प्रोजेक्टस और युवाओं के लिए 50 प्रशिक्षण केन्द्र और 50,000 बच्चों के लिए 600 आवासीय छात्रावास हैं।

एच. दलित और आदिवासी समाजों में कृषि समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सीमांत कृषकों के लिए एक स्कूल भी चलाया जाता है।

आई. सी.एस.आई. का जन्म इक्यूमेनिसम की प्रेरणा से और यूहन्ना 17:21 में यीशु मसीह के वचनों के द्वारा प्रेरित था।

जे. रोमन कैथोलिक चर्च के पश्चात् सी.एस.आई. भारत में दूसरा सबसे बड़ा मसीही समाज है।

के. चर्च का प्रशासन चेन्नई में सिनोड या सिनड के पीठासीन बिशप के द्वारा होता है जिन्हे मॉडरेटर भी कहा जाता है। इनका चुनाव प्रत्येक दो वर्ष में होता है।

एल. चर्च, सिनेट ऑफ सिरामपुर कॉलेज के बोर्ड ऑफ थियालॉजिकल एजुकेशन से मान्यता प्राप्त या सम्बद्ध शिक्षण संस्थाओं के द्वारा प्रदत्त थियालॉजिकल डिग्रियों को मान्यता देता है।

एम. सी.एस.आई., सी.एन.आई. और मार थोमा चर्च ने मिलकर 1978 में सेवा और अगुवों की आपसी पहचान, कम्यूनल सम्बंध, और विशेषकर भारत में सुसमाचार प्रचार के क्षेत्र में एक साथ मिलकर कार्य करने की संभावना की खोज के लिए "कम्यूनियन ऑफ चर्चेस इन इण्डिया" ;ब्ब्द्ध का गठन किया।

(यह पाठ मध्य प्रदेश स्कूल ऑफ इवेंजलिजम के रेव्ह. सैमुएल फ्रांसिस के द्वारा लिखा गया था।)

# पाठ 35

अध्याय 9 :

ईसवी सन् 1947 से भारत में मसीहीयत (क्रमशः)

3. भारत में लूथरन कलीसियाएं

परिचय : लूथरनवाद पश्चिमी मसीहीयत का प्रमुख भाग है जो अपनी जड़ें महान प्रोटेस्टेंट सुधारवादी मार्टिन लूथर में पाता है। लूथर के द्वारा रोमन कैथोलिक चर्च की थियालॉजी और अभ्यास या व्यवहार को सुधारने का प्रयास ही प्रोटेस्टेंट रिफॉर्मेशन या सुधारवाद का जनक है। लूथरनवाद "सिर्फ मसीह के कारण विश्वास ही से अनुग्रह के द्वारा" उद्धार के सिद्धान्त की वकालत करता है जो "प्रेम के द्वारा सृजित विश्वास" या "विश्वास और कार्य" के रोमन मत के विपरीत है।

भारत में यूनाइटेड इवेंजलिकल लूथरन कलीसियाओं में दर्जन भर भिन्न भिन्न लूथरन समूह आते हैं जिसमें पूरे भारत में 13,000 कलीसियाओं में 11,68,000 सदस्य और लगभग 20,00,000 अनुयायी हैं। यह वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेस इन इण्डिया और लूथरन वर्ल्ड फेडरेशन की सदस्य है।

इतिहास :

भारत में प्रथम लूथरन मिशनरी 1706 में – विलियम कैरी के भारत आगमन के 87 वर्ष पूर्व –आए। दो जन, बार्थोलोम्यूस ज़िगनबाग और हेनरिक प्लूटेस्क्यू, जर्मनी से थे किन्तु उन्हें डेनमार्क के राजा ने भेजा था और उनका खर्च उठाया था। फेडरेशन ऑफ इवेंजलिकल लूथरन चर्चेस इन इण्डिया (एफ.ई.एल.सी.आई.) का गठन 1926 में हुआ था। फेडरेशन के रूप में उसने एक मंच का कार्य किया और अनेक लूथरन समाजों को एकता के सूत्र में बांधा और बड़ी लूथरन सहभागिता में लाया।

1940 के दशक के अंतिम वर्षों में लूथरन परिचय और सहभागिता प्रदान करते हुए लूथरन वर्ल्ड फेडरेशन (एल. डब्ल्यु.एफ) का गठन हुआ। एल.डब्ल्यू.एफ. ने भारत में लूथरनों की अपनी गवाही और सेवा को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ाने के लिए नए अवसर प्रदान किए।

1974 में एफ.इ.एल.सी. एक परिवर्तन से गुजरा और यूनाइटेड इवेंजलिकल लूथरन चर्चेस इन इण्डिया (यू.ई.एल. .सी.आई) बन गया। इसने सहभागिता को कहीं अधिक मजबूत परिचय दिया और सदस्य कलीसियाओं के जीवन को बलवन्त किया।

1970 के दशक में लूथरन कलीसियाओं ने अपने नेतृत्व में विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, इत्यादि के अनेक कार्यक्रमआरंभ किए जबकि उनके पारम्परिक कार्य चलते रहे।

सामाजिक योगदान : 1979 में यू.ई.एल.सी.आई. ने निम्नलिखित के द्वारा समाज को अपना योगदान देना आरंभ किया:

– कलीसिया नेतृत्व को संवेदनशील बनाना

– कलीसियाओं में क्षमता बढ़ाने के लिए मदद देना

– सामाजिक सरोकार के विषयों के विकास कार्यक्रमों को सहयोग देना

– शिक्षा प्रदान करना

– जरूरतमंदों के लिये राहत और पुनर्स्थापना के कार्यों में जुटना

– दलितों और आदिवासियों को सक्षम बनाना

– शान्ति और मेल–मिलाप स्थापित कराने में सहयोग देना

– एच.आई.वी. और एड्स मरीजों को आघात से बाहर निकालना

यूनाइटेड इवेंजलिकल लूथरन चर्चेस इन इण्डिया की सदस्य कलीसियाएं (यू.ई.एल.सी.आई)

आन्ध्र इवेंजलिकल लूथरन चर्च, आरकोट लूथरन चर्च, इवेंजलिकल लूथरन चर्च इन मघ्य प्रदेश, इवेंजलिकल लूथरन चर्चेस इन हिमालयन स्टेट्स, गुड समेरिटन इवेंजलिकल लूथरन चर्च, गॉसनर इवेंजलिकल लूथरन चर्च इन छोटा नागपूर एण्ड असम, इण्डिया इवेंजलिकल लूथरन चर्च, जैपुर इवेंजलिकल लूथरन चर्च, नार्दर्न इव्रेजलिकल लूथरन चर्च, साउथ आंध्रा लूथरन चर्च, तमिल इवेंजलिकल लूथरन चर्च।

(यह पाठ स्कूल ऑफ इवेंजलिसम मध्य प्रदेश के भाई आइविन परेरा के द्वारा लिखा गया था।)

# पाठ 36

अध्याय 9 :

ईसवी सन् 1947 से भारत में मसीहीयत (क्रमशः)

## 4. भारत में पेंटीकॉस्टल कलीसियाएं

परिचय : वर्ष 2000 के मध्य तक भारत में पेंटीकॉस्टलवाद लगभग तीन करोड़ पैंतीस लाख तक बढ़ चुका था जो विश्व में पांचवा स्थान रखता है (ब्राजील, यू.एस.ए., चीन, और नाइजीरिया के बाद)। इसमें ये तीन आते हैं : 12,53,041 संस्थापित (क्लासिकल) पेंटीकॉस्टल, 50,32,741 कैरिस्मेटिक, और 2,72,34,219 नियोकैरिस्मेटिक।

भारत में पेंटीकॉस्टलवाद का आरंभ : 1860–61 में तिरूनलवेली में पेंटीकॉस्टल–शैली की जागृति का क्रम आरंभ हुआ जिसके पीछे ट्रावनकोर में 1874–75 में आत्मा का उंडेला जाना हुआ।

भारत में संस्थापित/क्लासिकल पेंटीकॉस्टलवाद का विकास और वृद्धि (1906–1960)

दक्षिण भारत में पेंटीकॉस्टल मिशनरियों ने अपना अधिकांश ध्यान सुसमाचार प्रचार और भारतीय सुसमाचार प्रचारकों और पासबानों को तैयार करने पर केन्द्रित किया। इसके विपरीत उत्तर भारत में आ रही कठिनाई को देखते हुए आरंभिक पेंटीकॉस्टल मिशनरियों ने वहां स्कूलों, रेडियो कार्यक्रमों, कुष्ठरोग आश्रमों और दवाखानों की स्थापना पर अपना ध्यान दिया। असेंब्लीज़ ऑफ गॉड ने प्राथमिक रीति से गंगा के मैदानों पर संस्थाओं की सर्वाधिक श्रृखंला विकसित की। इनमें ये कार्य आते हैं : बेतिया में अनाथालय और लड़कियों का स्कूल, पुरूलिया में लड़कियों का अनाथालय, नवाबगंज में जेम्स हार्वे ब्वायज़ स्कूल, 1911 में उसका बाजार में कुष्ठरोग सेवा कार्य, हरदोई में लड़के लड़कियों के लिए सहशिक्षा बाइबल स्कूल, रूपैडीहा में "बेबी फोल्ड", सिसवा बाजार में लड़कियों के लिए औद्योगिक स्कूल, लहरिया सराय में पुरूषों के लिए एक बाइबल स्कूल, बच्चों का लॉज, मिशनरियों के विश्राम और जागृति केन्द्र के रूप में एक हिमालयन हिल स्टेशन। पेंटीकॉस्टल होलीनेस मिशन भी जसीडीह, गीरीडीह और झा झा (लड़कों के लिए) और मधुपूर में अनाथालय (लड़कियों के लिए) स्थापित करने के द्वारा सक्रिय रहा है। इसके अतिरिक्त चर्च ऑफ गॉड और यूनाइटेड पेंटीकॉस्टल चर्च ने भी अपने दक्षिण भारत के कार्य को उत्तर में फैलाया है। हाल के दशकों में उत्तर भारत के मिशनरियों ने बड़े शहरों में पहुंचने का कार्य बढ़ाया है। कलकत्ता में मार्क और हुल्दा बन्टेन का कार्य पूरे भारत में पेंटीकॉस्टल कार्यों में उत्कृष्ट है। आज वहां 20,000 भूखे भारतीयों को प्रतिदिन भोजन कराया जाता है। यह एक अस्पताल, एक नर्सिग स्कूल, एक जूनियर कॉलेज, एक व्यवसायिक प्रशिक्षण शाला, छः ग्रामीण चिकित्सालयों, असहाय युवाओं के लिए एक हॉस्टल, मादक पदार्थों से बचाव कार्यक्रम, और 12 स्कूलों में विकसित हो चुका है जो 6000 बच्चों को शिक्षा प्रदान करता है।

भारत में कैथोलिक कैरिस्मेटिक अभियान : 1972 में एक युवा इंजीनियर जो यू.एस.ए. में पढते समय कैथोलिक मत में बदल गया था भारत में कैथोलिक कैरिस्मेटिक जागृति लाया। उसी वर्ष दो जेसुइट पुरोहितों ने मुम्बई में कैरिस्मेटिक प्रार्थना समूहों का गठन किया। यह अभियान पूरे महाराष्ट्र में और तब सम्पूर्ण भारत में फैल गया। 1974 में तीस कैथोलिक कैरिस्मेटिक अगुवे प्रथम राष्ट्रीय कैरिस्मेटिक कनवेंशन करने, कैरिसइण्डिया नामक एक दैनिकी का प्रकाशन करने, प्रेस द लॉर्ड गीत पुस्तक के प्रथम संस्करण का प्रकाशन करने और जागृति मे सेवा देने के लिए मुम्बई में मिले।

भारतीय नियोकैरिस्मेटिक : भारत मे नवीनीकरण के तहत अब तक का सबसे बड़ा समूह नियोकैरिस्मेटिकों का है। ये पेन्टीकॉस्टल शैली के अनुभव वाले और पवित्र आत्मा पर आम जोर देनेवाले मसीही समूह हैं जिनका कोई पारम्परिक पेंटीकॉस्टल या कैरिस्मेटिक डिनामिनेशनल सम्बंध नहीं हैं। यह दर्जनों स्वतन्त्र, स्वदेशी,

डिनामिनेशनल से परे डिनामिनेशन और समूहों का संगम है। 1969 में स्थापित न्यू अपॉस्टालिक चर्च भारत में अब तक का सबसे बड़ा नवीनीकरण समूह है इसके 14,48,209 सदस्य हैं। इंडिपेंडेंट पेंटीकॉस्टल चर्च ऑफ गॉड (1924 में स्थापित) दूसरा सबसे बड़ा है जिसके पूरे भारत और दस अन्य देशों में लगभग 9,00,000 सदस्य हैं। न्यू लाईफ फेलोशिप (1968 में स्थापित) के अब 4,80,000 सदस्य हैं और मन्ना फुल गॉस्पल चर्च और सेवाओं (1968 में स्थापित और पुर्तगाल से सम्बंधित) के 2,75,000 सदस्य हैं।

कुछ पेंटीकॉस्टल कलीसियाओं के नाम : दि चर्च ऑफ गॉड इन इंडिया, दि असेंबलीस ऑफ गॉड, इंडियन पेंटिकॉस्टल चर्च ऑफ गॉड, शारोन फेलोशिप, इंडियन इवेंजलिकल टीम, गॉस्पल फॉर एशिया, फुल गॉस्पल चर्चेस, यूनाइटेड पेंटिकॉस्टल चर्चेस इन इंडिया, पेंटीकॉस्टल होलीनेस चर्च इन इण्डिया, न्यू लाइफ फेलोशिप, न्यू अपॉस्टालिक चर्च, मन्ना फुल गॉस्पल चर्चेस और सेवाएं, द पेंटिकॉस्टल मिशन (पूर्व में सिलोन पेंटिकॉस्टल मिशन) ये भारत में पाए जाने वाले पेंटिकॉस्टल संस्थाओं में से कुछ उदाहरण ही हैं।

(यह पाठ मध्य प्रदेश स्कूल ऑफ इवेंजलिजम, 2013 के रेव्ह. सैमुएल फ्रांसिस के द्वारा लिखा गया था।)

# पाठ 37

अध्याय 9 :

ईसवी सन् 1947 से भारत में मसीहीयत (क्रमशः)

## 5. भारत में मेथोडिस्ट चर्च

परिचय : मेथोडिजम् को अपने आप में मिशनरी अभियान कहा जा सकता है। जॉन वेस्ली सुसमाचार प्रचार से – अर्थात, यह कि लोगों को परमेश्वर का वचन प्रचार करके बचाने की ईच्छा से – प्रेरित थे। मेथोडिस्टों ने, अपने अभियान के आरंभिक दिनों से ही, महान आदेश को – पुनरूत्थित यीशु के द्वारा उसके शिष्यों को उसके उद्धार को पृथ्वी की छोर तक ले जाने के आदेश को – बड़ी गंभीरता से लिया है।

मेथोडिस्ट चर्च इन इण्डिया में हाल ही में हुआ विकास :

ए. भारत ने 1956 में मेथोडिस्ट कार्य की शताब्दी मनायी। जिला कॉनफ्रेंस और एक्जीक्यूटिव बोर्डस् इनके मिशन क्षेत्र में महानतम् सहभागिता की ओर ले जाने वाले मील का पत्थर थे।

बी. 1920 में स्थापित मेथोडिस्ट मिशनरी सोसाइटी भारतीय रूपयों से चलायी जाने वाली स्वदेशी एजेंसी थी जिसने भारतीय मिशन क्षेत्रों में भारतीय मूल के मिशनरी भेजे।

- बाद में जिम्बाबवे, नेपाल, बोर्नियो (1956 में), फिजी द्वीप समूह (1963 में) और अन्य विदेशी मिशन क्षेत्रों में मिशनरी भेजे गए।
- आगे चलकर यह सोसाइटी बोर्ड ऑफ मिशंस ऑफ एम.सी.एस.ए. (मेथोडिस्ट चर्च ऑफ साउथ एशिया) कहलाई और अन्त में बोर्ड ऑफ इवेंजलिजम एण्ड मिशन्स कहलाई।

सी. वंचित वर्गों के मध्य सुसमाचार प्रचार के कार्य ने ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी संख्या में नवविश्वासियों को मेथोडिस्ट चर्च से जोड़ा।

डी. 7 जनवरी 1981 को मेथोडिस्ट चर्च इन इण्डिया (एम.सी.आई.) को वैश्विक यूनाइटेड मेथोडिस्ट चर्च के साथ सम्बंध में "स्वायत्त सम्बद्ध" चर्च के रूप में स्थापित कर दिया।

ई. बिशप डॉ. करिअप्पा सैमुएल एम.सी.आई. के चुने गए प्रथम बिशप थे।

एफ. चर्च अपने जीवन और संगठन में पूर्ण रीति से आत्मनिर्भर है और उसने अपना संविधान, बुक ऑफ डिस्पिलिन और विश्वास का वचन (आर्टिकल्स ऑफ फेथ) बनाया और स्वीकार किया है।

जी. एम.सी.आई. स्वयं को विश्वव्यापी कलीसिया के भाग के रूप में संसार में और संसार के लिए मसीह की देह समझती है। परमेश्वर के प्रेम को वैसा समझना जैसा यीशु मसीह में प्रगट किया गया है, सब लोगों को इस प्रेम की गवाही देना और उन्हे उसका शिष्य बनाना उसका उद्देश्य है।

मेथोडिस्ट चर्च इन इण्डिया की वर्तमान स्थिति :

ए. एम.सी.आई. वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेस, क्रिश्चियन कॉन्फ्रेंस ऑफ एशिया, नेशनल काउंसिल ऑफ चर्चेस इन इण्डिया और वर्ल्ड मेथोडिस्ट काउंसिल का सदस्य है। वह चर्च ऑफ नार्थ इण्डिया और चर्च ऑफ साउथ इण्डिया का भी सहभागी सदस्य है।

बी. 2006 मे इस डिनामिनेशन के छः इपिस्कोपल क्षेत्र थे जिसमें 12 कॉन्फ्रेसेस आती हैं।

- बैंगलोर, बरेली, मुम्बई, दिल्ली, हैदराबाद और लखनऊ चर्च के छः इपिस्कोपल क्षेत्र थे।
- इसमें 2,500 कलीसियाएं आती हैं जिनमें लगभग 6,49,000 सदस्य थे। इनमें 2,200 अभिषिक्त सेवक थे जिनमें से दस महिलाएं थीं।

सी. आज की तारीख में चर्च के सदस्यों की संख्या लगभग 7,00,000 के आस पास है।

डी. 1947 में भारत की स्वतन्त्रता के समय से सभी बिशप भारतीय रहे हैं। बिशपों के मध्य से किसी एक को काउंसिल ऑफ बिशप्स के प्रेसिडेंट के रूप में चुना जाता है।

सामाजिक कार्य

ए. मेथोडिस्ट चर्च 102 बोर्डिग स्कूल और 155 स्कूलों को संचालित करती है जिसमें लगभग 60,000 बच्चे नामांकित हैं।

बी. 89 आवासीय छात्रावास 6,540 लड़के लड़कियों को मसीही सेवा प्रदान करते हैं।

सी. एम.सी.आई. 19 महाविद्यालय और व्यवसायिक प्रशिक्षण संस्थान और 25 अस्पताल और स्वास्थ्य सेवा केन्द्रों का संचालन करती है।

डी. वे देश में अनेक समाजिक उत्थान और विकास कार्यक्रम संचालित करते हैं।

(यह पाठ मध्य प्रदेश स्कूल ऑफ इवेंजलिजम, 2013 के भाई रमेश खन्ना के द्वारा लिखा गया था।)

# पाठ 38

## अध्याय 10 :

## बचा हुआ कार्य

हमने इस पाठ्यक्रम में समझने का प्रयास किया कि यीशु मसीह का सुसमाचार भारत में कैसे जाना गया और शताब्दियों से आज तक कलीसिया की वृद्धि कैसे हुई है। इस अंतिम अध्याय में हम बचे हुये कार्य पर ध्यान केन्द्रित करना चाहते हैं। भारत देश के सब लोगों, भाषाओं और जनजातियों तक सुसमाचार पहुंचाने के लिए परमेश्वर के बच्चों को क्या करना चाहिए?

1. विश्व के सबसे कम सुसमाचार सुने लोगों की संख्या भारत में है।

   ए. 10,00,000 की जनसंख्या वाले 159 जाति समूह के लोगों में से 133 समूहों तक सुसमाचार अभी भी नहीं पहुंचा है।

   बी. दस लाख से कम आबादी वाले 100 से अधिक जाति समूह अभी भी सुसमाचार से वंचित हैं।

   सी. भारत के 953 छोटे जाति समूह, जिनकी संख्या 10,000 से कम है, में कोई कलीसिया नहीं है, 205 के पास कोई कलीसिया नहीं है और मसीहियों ने सुसमाचार भी कम पहुंचाया है। ये सब राज्यों में मिल सकते हैं यद्यपि उनकी संख्या उत्तर में अधिक है।

2. कुछ विषिष्ठ समूहों के नाम नीचे दिए जा रहे हैं जिन तक सुसमाचार पहुंचाया जाना है :

   ए. ब्राह्मणों की संख्या 5 करोड से ऊपर है किन्तु संभवतः सिर्फ 18,000 ही यीशु के शिष्य हैं।

   बी. ऊँची जातियों में मसीहियों के लिए नकारात्मक विचार हैं। वे बहुधा उन्हें दलितों के रूप में देखते हैं जिन्होंने पश्चिमी शाही विचारों के लिए हिन्दु संस्कृति का तिरस्कार किया है। ऊँची जातियों के मध्य बहुत ही अल्प प्रभावशाली सेवा हो रही है।

   सी. अधिकांश पिछड़े वर्गों तक सुसमाचार नहीं पहुंचा है। यादव, कुर्मी, मप्पिला, लिंगायत, कैरी, सोनार, गूजर और वक्कालिगा में प्रति हजार पर एक से भी कम विश्वासी पाए जाते हैं।

   डी. अनुसूचित जाति या दलितों ने सुसमाचार का अच्छा प्रतिसाद दिया है, कुछ तो बड़ी अच्छी संख्या में किन्तु धोबी, महार, पासी, नामशुद्र और अन्य अनेक समूह अभी भी सुसमाचार से अछूते ही हैं।

   ई. अनेक जनजातियां अभी भी सुसमाचार से दूर हीं हैं। अनेक वर्षों की सेवा के पश्चात् भीलों और गोंड़ों के मध्य अनेक कलीसियाएं तो हैं किन्तु दोनों ही बमुश्किल एक प्रतिशत हैं। कोली में सिर्फ 0.03 प्रतिशत मसीही हैं।

3. कुछ विशिष्ठ समूहों के नाम नीचे दिए जा रहे हैं जहां विशेष प्रकार की सेवाओं के पहल की आवश्यकता है :

   ए. प्रभावशाली समूह – 35 करोड़ मिडिल क्लास भारतीय हैं जिनका मसीहियों से अल्प सम्पर्क है।

   बी. विद्यार्थी समूह – 320 विश्वविद्यालयों और 23,000 महाविद्यालयों में साढ़े ग्यारह करोड़ विद्यार्थी हैं।

   सी. युवा समूह – भारत में 15 वर्ष की आयु से नीचे के 40 करोड़ युवा हैं! कलीसिया को उनकी उपेक्षा नहीं करना चाहिए।

   डी. कुष्ठरोगी समूह – भारत में लगभग 1000 से अधिक कुष्ठरोग बस्तियां हैं। कौन परमेश्वर का प्रेम उन तक

पहुंचाएगा?

ई. दृष्टिहीन समूह – भारत में डेढ़ करोड़ दृष्टिहीन पाए जाते हैं और पांच करोड़ दृष्टिबाधित भी हैं।

एफ. मौखिक सीखनेवालों का समूह – बहुसंख्य भारतीय निरक्षर हैं। मसीह और बाइबल की सच्चाई उन तक मौखिक रूप से पहुंचाई जानी आवश्यक है।

4. धार्मिक अल्पसंख्यक जो सुसमाचार के प्रति कठोर हैं :

ए. मुसलमान – आधिकारिक तौर पर भारत में 16 करोड़ मुसलमान हैं परन्तु संभवतः इसकी सही संख्या इससे भी बहुत अधिक है। वे सुसमाचार के विरोधी रहे हैं परंतु हाल के वर्षों में कुछ मुसलमान मसीह के पास आए हैं।

बी. सिख समाज – मसीहियों को सिख धर्म की बहुत कम समझ है जिससे वे सिखों को मसीह के बारे बताने में अक्षम हो जाते हैं। कनाडा और अमरीका में मसीह के पास आने वाले सिखों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

सी. बौद्ध धर्म भारत में बढ़ रहा है क्योंकि अनेक दलित हिन्दु धर्म से बौद्ध धर्म अपना रहे हैं।

डी. धन, अलगाव और विशिष्ठ धर्म के कारण जैनियों और पारसियों तक पहुंचना अत्यंत कठिन है, तौभी वे समाज, उद्योग और व्यापार में बहुत प्रभावशाली हैं।

समापन : भारत के मसीही, भारतीयों तक यीशु मसीह के प्रेम और उद्धार को पहुंचाने के लिए महान आदेश की चुनौती को स्वीकार करने में उतरोत्तर आगे आ रहे हैं। फिर भी काम बहुत बाकी है। आप उन लोगों तक यीशु के प्रेम और उद्धार को पहुचाने के लिए क्या करेंगे जिन्हें अब तक उसे जानने और स्वीकार करने का अवसर नही मिला है ?

## पाठ 39

### ग्रंथ–सूचि Bibliography

1. C.B.Firth, Introduction to Indian Church History, CLS, Madras, 1968
2. M.K.Kuriakose, History of Christianity in India, Source Material
3. Perumalil and Hambye, Christianity in India: A History in Ecumenical Perspective,1972
4. J.W.Pickett, Christian Mass Movement in India, Lucknow Publishing House, Lucknow, 1933
5. UBS Extension Education Department, History of Christianity in India, 1985
6. TAFTEE by Extension, India Church History, 1989
7. UBS BD level, History of Christianity in India, Study Notes,1991
8. S.D.Ponraj, Pioneers of the Gospel, Mission Education Books